ॐ

संस्कार विद्या

संकलन

अनेक विधान रचयिता बुंदेली संत
मुनिश्री सुव्रतसागरजी महाराज

प्रस्तोता

बा० ब्र० संजय भैया, मुरैना

कृति : संस्कार विद्या

आशीर्वाद : संयम स्वर्ण महोत्सव मण्डित
आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

कृतिकार : अनेक विधान रचयिता बुंदेली संत
मुनिश्री सुव्रतसागरजी महाराज

प्रसंग : मुनिश्री सुव्रतसागरजी महाराज का स्वर्णिम
अवतरण वर्ष एवं रजत दीक्षा वर्ष 2023

संयोजना : बा० ब्र० संजय भैयाजी, मुरैना

संस्करण : प्रथम 2023

आवृति : 1100 प्रतियाँ

सहयोग राशि : 100/- (पुनः प्रकाशन हेतु)

प्रकाशक : विद्यासुव्रत संघ

प्राप्ति स्थान : 1. बा० ब्र० संजय भैयाजी, मुरैना
सम्पर्क–94251-28817
2. अमर ग्रंथालय इंदौर, 9425478846

मुद्रक : विकास ऑफसेट, भोपाल

पुण्यार्जक

श्रीमान् अशोककुमार-श्रीमती सुनीता,
सचिन-श्रीमती प्रियंका, अंकित-श्रीमती शिवानी,
भव्या, पाश्वी जैन बाहुबली कॉलोनी सागर (म.प्र.)

अंतर्भाव

जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति कर्म काटने का सशक्त साधन है। जैसे लैंस के फोकस से कागज जल जाता है वैसे ही भक्ति के फोकस से हमारे कर्मरूपी कागज जल जाते हैं। भगवान् का नाम मात्र स्मरण करने से सभी किरणें फोकस बनकर पाप समूह को नष्ट करती हैं।

आगम के आधार पर जीवन में संस्कार विधि को ध्यान में रखकर प्रस्तुत कृति 'संस्कार विद्या' के प्रेरणास्त्रोत अनेक विधान रचयिता बुंदेली संत परमपूज्य मुनि श्रीसुव्रतसागरजी महाराज ने करके महान् उपकार किया है। प्रस्तुत कृति में जीवन की प्रारम्भिक दशा गर्भाधान से लेकर विवाह तक के सोलह संस्कार सम्मिलित हैं।

यह कृति सभी के जीवन को संस्कारित करने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। इसमें प्रत्येक विधि आगमानुसार शास्त्रोक्त विधि से रखी गयी है। सभी अपने जीवन को संस्कारित करके अपूर्व पुण्यार्जन करेंगे इसी भावना के साथ सभी को सादर जय-जिनेन्द्र!

तुम्हें सारथी बना लिया है, मोक्षपुरी के गजरथ का।
तुरत हमें दर्शन करवा दो, शुद्धातम के तीरथ का॥
कहो कहाँ हस्ताक्षर कर दें, हमको भी स्वीकार करो।
भक्त खड़े नत हाथ जोड़कर, हम सबका उद्धार करो॥

-बा० ब्र० संजय, मुरैना

विषय-वस्तु (INDEX)

विषय	पृ. क्र.
गुरु मंत्र- A	06
गुरु मंत्र- B	11
संस्कारों के भेद	16
1. गर्भाधान-क्रिया/संस्कार	20
2. प्रीति-क्रिया/संस्कार	25
3. सुप्रीति (पुंसवन) -क्रिया/संस्कार	28
4. धृति-क्रिया/संस्कार	31
5. मोद (सीमन्तनी) -क्रिया/संस्कार (गोद भराई)	34
6. प्रियोद्भव (जातकर्म) -क्रिया/संस्कार	37
7. (अ) नामकर्म-क्रिया/संस्कार	41
7. (ब) कर्ण/नासिका वेध-क्रिया/संस्कार (कान-नाक का छेदना)	46
7. (स) दोलारोहण-क्रिया/संस्कार	48
8. बहिर्यान-क्रिया/संस्कार (प्रथम जिनदर्शन-जिनमंदिर दिवस)	50
9. निषद्या-क्रिया/संस्कार (बैठना)	53
10. (अ)अन्नप्राशन-क्रिया/संस्कार (पासनी-उपासनी)	56
10. (ब)पादन्यास -क्रिया/संस्कार (गमन विधि)	59

11. व्युष्टि-वर्षवर्धन-क्रिया/संस्कार (जन्मदिवस) 61

12. केशवाप-क्रिया/संस्कार
(क्षौरकर्म/चौलकर्म/मुण्डन) 63

13. लिपिसंख्यान-क्रिया/संस्कार 69

14. उपनीति (उपनयन/यज्ञोपवीत/सम्यक्-अर्हता)-
क्रिया/ संस्कार 72

15. व्रतचर्या-क्रिया/संस्कार 76

16. व्रतावतरण-क्रिया/संस्कार 79

17. विवाह-क्रिया/संस्कार 82

18. (अ) वर्णलाभ-क्रिया/संस्कार 104

18. (ब) दत्तक पुत्र-संस्कार 106

19. शवदाह-क्रिया/संस्कार (अंतिम संस्कार) 108

20. वैधव्य दीक्षा संस्कार 117

21. पुण्याहवाचन 118

22. बुंदेली भजन-१ 119

23. बुंदेली भजन-२ 120

❑ ❑ ❑

गुरु मंत्र-A

क्या होते हैं संस्कार...?

संस्कार का लक्षण

आज अगर देखा जाए तो संस्कारों के नाम पर मात्र अंतिम संस्कार ही जीवित है और सारे संस्कार मृत्यु को प्राप्त हो गए चुके हैं इसलिए हम सभी लोगों को इस विषय पर विचार करते हुए संस्कारों को पुनः जीवित बनाने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि शिक्षा के साथ-साथ संस्कार, व्यापार के साथ-साथ व्यवहार और परमात्मा के साथ-साथ परिवार अगर जीवित रहेंगे तो हमारा जीवन, परिवार, समाज, देश और धर्म सब कुछ सुरक्षित रहने वाले हैं अन्यथा हम संस्कारों के अभाव में चलते फिरते श्मशान माने जाएंगे। हम संस्कारों से रहित ना हो जाएँ इसी भावना से प्रेरित होकर यह जिनशासन के संस्कारों की परम्परा आप तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है।

'सम' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगकर संस्कार शब्द की उत्पत्ति होती है। संस्कार शब्द का अर्थ कान्तिसूचक है। तात्पर्य यह हुआ कि संस्कार चमकने,पॉलिश करने, बाहरी स्वच्छता, शुद्धि और सुबह आदि के अर्थों में आता है। मानव संस्कार हृदय की उस चमक या शोभा का द्योतक है, जिससे मनुष्य का रहन सहन, भावना, बुद्धि व्यक्तित्व समाज में दीप्त हो उठता है। व्यक्ति की मनोवृत्ति की शुद्धि, शिक्षा, उपदेश, संगति आदि से संस्कारों के द्वारा पड़ने वाले प्रभाव का परिचय उसके संस्कारों द्वारा प्राप्त होता है।

जैसे मणियाँ खदान से आकार-प्रकार कान्ति और सौन्दर्य से रहित अवस्था में मिलती हैं फलतः उनका मूल्यांकन करने में प्रायः त्रुटियाँ हो जाती है किन्तु उन संस्कारहीन मणियों के सुयोग्य संस्कार से उनमें आकार-प्रकार, चमक-दमक सौन्दर्य का विकास होता है जिससे उनका मूल्यांकन करने में सरलता होती है और वे बहुमूल्य सिद्ध हो जाती हैं यह उनकी बहुमूल्यता संस्कारों के द्वारा आती है वैसे ही चार गतियों और चौरासी लाख योनिरूपी खदानों में संसारी प्राणियों का भ्रमण होता रहता है। इस संसार भ्रमण के चक्कर में मनुष्य पर्याय अपने आप में महत्वपूर्ण है जिसमें जन्म काल से बालक विवेक के अभाव में गुणहीन, ज्ञानहीन, सदाचारहीन, अशुद्ध और अव्यवस्थित जीवन वाला होता है परन्तु यहीं से उसके संस्कारों की शिक्षा-दीक्षा भी प्रारंभ होती है। शिक्षा-दीक्षादि संस्कारों से बालक गुणरूपी कान्ति और सदाचार रूपी सौन्दर्य प्राप्त करते-करते कब पालक बन जाता है इसका किसी को आभास भी नहीं हो पाता है। इसीलिए कहा भी है कि-

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारवशात् द्विज उच्यते।
जन्मना जायते शूद्रः संस्कारवशात् क्षत्रिय उच्यते।
जन्मना जायते शूद्रः संस्कारवशात् वैश्य उच्यते।

अर्थात् मनुष्य जन्म से शूद्र गुणहीन उत्पन्न होता है किन्तु संस्कार से गुणवान ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कहा जाता है।

मानवव्यक्तित्वस्य विकसनमेव संस्कृतिः।

मानव के व्यक्तित्व का विकास होना ही संस्कृति या संस्कार हैं।

संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति योग्य कस्यचिदर्थस्य।

अर्थात् संस्कार उसे कहते हैं जिसके सम्पन्न होने पर पदार्थ (वस्तु) किसी प्रयोजन के योग्य हो जाता है।

योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यते।

योग्यता को विकसित करने की क्रिया को संस्कार कहते हैं।

संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा।

जिनके द्वारा गुणों का विकास हो अथवा दोषों का निराकरण हो, उसे संस्कार कहते हैं (जैन पूजा काव्य-एक चिन्तन)

जिस शिक्षा से मनुष्य का हित करने, एकता तथा सामञ्जस्य बनाने, दीन दरिद्र, असहाय, अनाथ की सहायता करने के विचार उत्पन्न होते हैं और आध्यात्मिक गुणों का विकास, वृद्धि और समृद्धि होती है, उस शिक्षा को संस्कार कहते हैं।

दोषों को दूर करके गुणों को ग्रहण करना ही संस्कार है।

मानव समाज में मानवीय गुणों के बहुमुखी विकास का परिणाम ही संस्कार है।

सोहमय जीवन को स्वर्णमय बनाना या स्वर्ण रूप में परिणमित करना ही संस्कार है, इसलिए संस्कार की भूमिका पारसमणि जैसी है। अपने देश, कुल एवं ऐतिहासिक पुरुषों की संस्कृति उत्तम परम्पराओं को जीवित बनाये रखने की भावना ही संस्कार है।

सन्तान को संस्कारित करने और कौटुम्बिक जीवन को सुविकसित करने की एक मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक क्रिया पद्धति

को संस्कार कहा जाता है। ये सभी सद्‌गुण, जो एक पुरुष को आम पुरुषों की भीड़ से पृथक कर महापुरुषों की श्रेणी में लाते हैं, ये संस्कार का अंग बनते हैं। आत्मा शरीर एवं वस्तुओं की शुद्धि हेतु समय-समय पर जो विशेष कार्य किये जाते हैं, वे संस्कार कहलाते हैं।

संस्कारों को ग्रन्थकारों ने अनेक रूप से कथन किया है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव की अपेक्षा से आचार्यों ने संस्कारों का पृथक-पृथक विवेचन किया है। वस्तु का स्वरूप ही संस्कार है जिसको स्मृति का बीज माना गया है।

आज संस्कार क्या होते हैं? इस विषय से हर एक व्यक्ति अपरिचित है क्योंकि संस्कारों से ही प्रत्येक वस्तुओं का स्वभाव परिवर्तित होता है । जन्म से कोई व्यक्ति श्रेष्ठ या महान नहीं बनता है किन्तु संस्कारों से वह श्रेष्ठ या महान बनता है। इन संस्कारों के विषय में हम लोग अपरिचित रहते हैं इसी बात से जैन धर्म में कुछ संस्कारों का उल्लेख है जिनके बारे में हमारे तीर्थंकरों ने अपनी दिव्य देशना में उल्लेख किया जिनको आचार्यों ने ग्रंथों में लिपिबद्ध किया। इन्हीं संस्कारों के विषय में हम आपको परिचित कराना चाहते हैं इसलिए इस ग्रंथ की संयोजना करने का विचार आया।

वस्तु का स्वभाव ही धर्म है किन्तु व्यक्ति की अपेक्षा से चारित्र ही उसका धर्म है। आत्मा का कर्म के साथ सम्बन्ध रहने की अवस्था तक आत्मा के व्यक्ति रूप होने से उसका आचरण, चर्या या चारित्र ही उसका धर्म है। चारित्र को सम्यक् बनाने के लिए सद् संस्कारों की आवश्यकता होती है। आत्मा का कर्म के संयोग से

दूषित होने के कारण विकारी अवस्था में रहने का नाम ही संसार है। उसे निर्मल बनाने के लिए सद्-संस्कार आवश्यक हैं। आत्मा जहाँ सद् संस्कारों से पवित्र होती है, वहीं कुसंस्कारों से अपवित्र हो जाती है अतः व्यक्ति को आत्म शुद्धि के लिए अपनी आत्मा को संस्कारित करना चाहिए।

धर्म और संस्कृति व्यक्ति के संस्कार के आधार से चलती है, अतः व्यक्ति के साथ संस्कार का बहुत महत्व है। संस्कार से संस्कृति सुरक्षित रहती है और संस्कृति से समाज सुरक्षित रहता है। व्यक्ति के जीवन की सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ उसके संस्कारों के अधीन होती हैं। जिस प्रकार से खान से निकलने वाला पाषाण संस्कारित होकर परमात्मा बनकर पूज्यता प्राप्त कर लेता है और मिट्टी, ईंट, चूना आदि को संस्कारित करने से उससे महल बन जाता है उसी प्रकार से जीव का माता के गर्भ में आते ही उसे संस्कारित किया जाए तो वह समय आने पर योग्य मनुष्य बन जाता है।

एक संस्कारवान् बालक अपने परिवार को सुरक्षित रखने की क्षमता रखता है एक संस्कारवान् संत अपने देश को सुरक्षित रखने की क्षमता रखता है और इसी तरह से एक संस्कारवान् भगवान सारे विश्व को सुरक्षित रखने की क्षमता रखता है इसलिए अगर हमें अपने विश्व को अपने देश को अपने परिवार को और अपने आप को सुरक्षित रखना है तो संस्कारवान् होना परम आवश्यक है।

गुरु मंत्र-B
संस्कारों के प्रकार

संस्कार कई प्रकार के होते हैं। यहाँ पर आत्मा या जीव के संस्कार विचारणीय हैं। संस्कारों का प्रभाव आत्मा के साथ अनेक जन्मों तक रहता है। कुसंस्कारों से उसके धर्म, कर्म और जन्म प्रभावित होते हैं फलस्वरूप उसे स्वर्ग नरकादिक ८४००००० योनियों के सुख-दुःखों का सामना करना पड़ता है एवं सुसंस्कारों से उसको सांसारिक प्रतिष्ठा और संपत्ति के साथ-साथ आध्यात्मिक सुख-मोक्ष सुख भी प्राप्त होता है। इन सभी बिंदुओं पर विचार करते हुए संस्कारों की कुछ प्रकार यहाँ पर बताए जा रहे हैं। जो इस प्रकार से हैं-

१. सुसंस्कार, २. कुसंस्कार, ३. असंस्कार, ४. पूर्वोपार्जित, ५. कुलपरम्परागत संस्कार, ६. माता-पिता से प्राप्त संस्कार, ७. संगति से प्राप्त संस्कार, ८. गुरु से प्राप्त संस्कार, ९. मंत्र संस्कार, १०. अगृहीत संस्कार, ११. गृहीत संस्कार ।

१. सुसंस्कार

तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वे ऽवतिष्ठते ॥ (समाधितंत्र)

मन भेद विज्ञान रूप संस्कार के द्वारा आत्म स्वरूप में स्थिर हो जाता है। इसलिए भेद-विज्ञान रूप संस्कार को हमने यहाँ सुसंस्कार कहा है।

जिन कार्यों को करने से स्व-पर का हित हो, ऐसे कार्यों को करने की भावना रखना सुसंस्कार हैं। परोपकार, दया, करुणा, देशहित, पापनिवृत्ति एवं अच्छे कार्यों में प्रवृत्ति होना ही सुसंस्कार हैं।

२. कुसंस्कार

अविद्याभ्यास-संस्कारवश क्षिप्यते मनः । (समाधितंत्र)

अविद्या के अभ्यास रूप संस्कारों से मन स्वाधीन न रहकर विक्षिप्त हो जाता है।

जिन कार्यों से जीवन पतित हो जाता है या निंदित होता है वे सब कुसंस्कार कहलाते हैं।

जिन कार्यों को लोक में पाप, व्यसन, बुरी आदत या लत आदि के नाम से जाना जाता हैं, वे सब कुसंस्कार हैं।

३. असंस्कार

जो व्यक्ति अपने जीवन के बारे में कुछ नहीं जानता, जहाँ कहीं जो कुछ भी क्रियाएँ करता रहता है, यद्वा-तद्वा बोलता रहता है, भक्ष्याभक्ष्य खाता रहता है, वह असंस्कारित कहलाता है।

४. पूर्वोपार्जित संस्कार

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि ।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रान्तिं भूयोऽपि गच्छति॥

(समाधितंत्र ४५)

अन्तरात्मा अपने आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को जानता हुआ भी और शरीरादिक अन्य पर पदार्थों से भिन्न अनुभव करता हुआ भी पहली बहिरात्मावस्था में होने वाले पूर्व के भ्रान्ति के संस्कारवश पुनरपि भ्रान्ति को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् पूर्व भवों में किये गये कर्मों के फल से सहजरूप से किसी व्यक्ति, धर्म या कार्य विशेष से राग, द्वेष होना पूर्वोपार्जित संस्कार है।

अविद्याभ्यास-संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः ।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वे ऽवतिष्ठते ॥

(समाधि तंत्र ३७)

शरीरादिक को शुचि, स्थिर और आत्मीय मानने रूप जो अविद्या अज्ञान है, उसके पुनः पुनः प्रवृत्ति रूप अभ्यास से उत्पन्न हुए संस्कारों द्वारा मन स्वाधीन न रहकर विक्षिप्त हो जाता है, रागी-द्वेषी बन जाता है और वही मन आत्म देह के भेद-विज्ञान रूप संस्कारों द्वारा स्वयं ही आत्म स्वरूप में स्थिर हो जाता है।

५. कुल परम्परागत संस्कार

दादा परदादा, माता-पिता आदि के क्रम से चली आयी अच्छी-बुरी आदतें आदि (अनुवांशिकता) कुलपरम्परागत संस्कार हैं।

६. माता-पिता से प्राप्त संस्कार

गर्भावस्था से ही माता-पिता द्वारा दी जाने वाली अच्छी आदतें, शिष्टाचार, कुलाचार एवं विनय आदि की शिक्षा माता-पिता से प्राप्त संस्कार हैं।

७. संगति से प्राप्त संस्कार

अच्छे-बुरे, जड़-चेतन के कारण संयोग-वियोग से जीवन में आने वाले परिवर्तन, स्मृतियाँ एवं उनसे होने वाले कर्म रूप संस्कार संगति से प्राप्त संस्कार हैं।

८. गुरु से प्राप्त संस्कार

पाँच वर्ष की उम्र से गुरुजन अध्येता को उनकी कुल जाति, वय के योग्य अस्त्र-शस्त्र, कला, वाणिज्य, शिल्प आदि अनेक विद्याओं में दक्ष करते हुए धर्म, अहिंसा,न्याय, नीति, उदारता, दान, शील, सन्तोष आदि गुणों से संस्कारित करते हैं। इस प्रकार वे गुरु से प्राप्त संस्कार हैं।

९. मंत्र संस्कार

साधक और आराधक को साधना एवं भक्ति का प्रभाव, एकाग्रता एवं आस्था के द्वारा मंत्रों के संस्कारों से गुणों की स्थापना करने से पूज्यता प्राप्त हो जाती है। जैसे-मंत्र संस्कार से पाषाण भगवान बन जाता है। गुरुओं द्वारा मंत्र संस्कार को प्राप्त कर व्यक्ति महाव्रत पालन करने वाला साधु बन जाता है अर्थात् सामान्य वस्तु या व्यक्ति मंत्र संस्कार से विशेष बन जाता है, पूज्यता प्राप्त कर लेता है।

१०. अगृहीत संस्कार

पूर्वभव के वैर प्रीति उपकार, अपकार एवं शुभाशुभ कर्मों से परस्पर में तदनुरूप कार्य स्वभाव से ही होते हैं। पूर्वभव के स्नेह रूप संस्कार के कारण इस भव में भी राधोवेध पूर्वक द्रौपदी और अर्जुन का संयोग हुआ। (हरिवंश पुराण- सर्ग ६४)

कुसंस्कार से मुनिराज को विषमिश्रित आहार देने के कारण नागश्री ने अनेक भवों में अपार दुःख सहने के बाद उपदेश के संस्कार से दीक्षा धारण कर स्वर्ग प्राप्त करना एवं पूर्व प्रीति के संस्कार से पूर्वपति के जीव का देव पर्याय में पहुँचना आदि सब संस्कारों का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। वहीं सुसंस्कार के कारण पाण्डवों के पाँचों जीवों ने दीर्घकाल तक स्वर्गों के सुख भोगकर मोक्ष सुख प्राप्त किया।

अगृहीत संस्कार में पूर्वकृत कर्म पैर और प्रीति प्रमुख होते हैं। जिसके कारण जीव भव-भव तक साथ रहकर वैर और प्रीति के परिणाम भोगते रहते हैं। पूर्व बैर के कारण धूमकेतु नामक देव

ने प्रद्युन का अपहरण कर लिया और प्रद्युम्न के पुण्य एवं प्रीति के कारण कालसंवर और कनकमाला के यहाँ पालन-पोषण हुआ।

(हरिवंश पुराण, सर्ग-४३, २२२-२२४)

पूर्व प्रीति के कारण माँ के समान पालन करने वाली कनकमाला प्रद्युम्न के रूप यौवन पर मोहित हो गयी।

(हरिवंश पुराण, सर्ग- ७९,६०, ६१)

ये सब पूर्व बैर और प्रीति के संस्कार वश होने वाले कृत्य हैं। पूर्व में किये गये अपकार का बदला अगले भव में धूमकेतु देव ने लिया एवं पूर्वभव में किये उपकार का प्रतिफल उसको संबोधन कर उसका उपकार किया। पूर्वभव के पुत्रों ने चाण्डाल और कुत्ती को संबोधन किया, जिससे चाण्डाल, देव हुआ, कुत्ती राजपुत्री हुई। स्वयंवर के समय उस देव ने संबोधन किया, जिससे उसने दीक्षा ले ली। (हरिवंश पुराण, सर्ग-४३, १५३-१५६) इस प्रकार अगृहीत संस्कार अनेक सुख-दुख के कारण बनते हैं।

११. गृहीत संस्कार

गृहीत संस्कार में गर्भाधान आदि संस्कार किये जाते हैं। जन्म के समय जात संस्कार और फिर विद्याध्ययन संस्कार किये जाते हैं। नेमिनाथ भगवान के जन्म के समय दिक्कुमारियों ने जातकर्म किया। (हरिवंश पुराण, सर्ग-३७-८३) जन्म समय कृष्ण का नन्दगोप के यहाँ जात संस्कार हुआ। जातकर्म के द्वारा श्रेष्ठ संस्कार दिये जाते हैं। जिससे उसके शरीर और मन पर प्रभाव है।

❑ ❑ ❑

सुसंस्कारों के भेद

ताश्च क्रियास्त्रिधाऽऽनाताः श्रावकाध्याय-संग्रह।
सद्दृष्टिभिरनुष्ठेयामहोदर्काः शुभाः॥५०॥
गर्भान्वयक्रियाश्चैव तथा दीक्षान्त्रय क्रियाः।
कर्वन्वयक्रियाश्चेति तास्त्रिधर्मतः॥५१॥

जैनदर्शन में आचार्य जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण के ३६वें सर्ग में कहा है कि श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए श्रावकाध्याय संग्रह में तीन प्रकार की क्रियाएँ कही हैं। सम्यग्दृष्टि पुरुषों को इन क्रियाओं का पालन अवश्य करना चाहिए। ये उत्तम फल देने एवं शुभ करने वाली हैं। व्यक्ति का सामाजिक सम्मान एवं जात करने के लिए जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था का उल्लेख किया है, वहीं संस्कार व्यवस्था का भी प्रतिपादन किया है। इन संस्कारों को तीन भागों में विभक्त किया है।

(अ) गर्भान्वय क्रिया
(ब) दीक्षान्वय क्रिया
(स) कर्तृन्वय क्रिया

(अ) गर्भान्वय क्रिया/संस्कार (ये तिरेपन हैं)

१. आधान (गर्भाधान) २ प्रीति ३. सुप्रीति ४. धृति ५. मोद ६. प्रियोद्भव ७. नामकर्म ८. बहिर्यान ९ निषद्या १०. प्राशन (अन्नप्राशन) ११. व्युष्टि (वर्षवर्धन) १२. केशवाप (मुण्डन) १३. लिपि संख्यान संग्रह १४ उपनीति (उपनयन) १५. व्रतचर्या १६. व्रतावतरण १७. विवाह १८. वर्णलाभ १९. कुलचर्या

२०. गृहीशिता २१. प्रशान्ति २२. गृहत्याग २३. दीक्षाद्य २४. जिनरूपता २५. मौनाध्ययनवृत्ति २६ तीर्थकृत भावना २७. गुरुस्थानाभ्युगम २८. गणोपग्रहण २९. स्वगुरुस्थान संक्रान्ति ३०. निःसंगत्वात्म भावना ३१. योग सम्प्राप्ति ३२. योगनिर्वाण-साधन ३३. इन्द्रोपपाद ३४. अभिषेक ३५. विधिदान ३६. सुखोदय ३७ इन्द्रत्याग ३८. अवतार ३९. हिरण्योत्कृष्टजन्मता ४०. मन्दरेन्द्र-अभिषेक ४१. गुरुपूजा-उपलम्भन ४२. यौवराज्य ४३. स्वराज्य ४४. चक्रलाभ ४५. दिग्विजय ४६. चक्राभिषेक ४७. साम्राज्य ४८. निष्क्रान्ति ४९. योगसन्मह ५०. आर्हन्त ५१. तद्विहार ५२. योगत्याग ५३. अग्र निर्वृत्तिता।

(ब) दीक्षान्वय संस्कार (ये अड़तालीस हैं)

१. अवतार २. वृतलाभ ३. स्थानलाभ ४. गणग्रहण ५. पूजाराध्य ६. पुण्ययज्ञ ७. दृढचर्या ८. उपयोगिता ९. उपनीति १०. व्रतचर्या ११. व्रतावतरण १२. विवाह १३. वर्णलाभ १४. कुलचर्या १५. गृहीशिता १६. प्रशान्ति १७. गृहत्याग १८. दीक्षाद्य १९. जिनरूपता २०. मौन-अध्ययनवृतत्त्व २१. तीर्थकृत भावना २२. गुरुस्थानाभ्युगम २३. गणोपग्रहण २४. स्वगुरुस्थान संक्रान्ति २५. निःसंगत्वात्मभावना २६. योगनिर्वाण सम्प्राप्ति २७. योगनिर्वाणसाधन २८. इन्द्रोपपाद २९. अभिषेक ३०. विधिदान ३१. सुखोदय ३२. इन्द्रत्याग ३३. अवतार ३४. हिरण्योत्कृष्ट-जन्मता. ३५. मन्दरेन्द्राभिषेक ३६. गुरुपूजोपलम्भन ३७. यौवराज्य ३८. स्वराज्य ३९. चक्रलाभ ४०. दिग्विजय ४१. चक्राभिषेक ४२. साम्राज्य ४३. निष्क्रान्ति ४४. योगसन्मह ४५. आर्हन्त ४६. तद्विहार ४७. योगत्याग ४८. अग्र निर्वृत्तिता।

(स) कर्तृन्वय संस्कार (ये सात हैं)

१. सज्जाति २. सद्गृहित्व ३. पारिव्राज्य ४. सुरेन्द्रता ५. साम्राज्य ६. परमार्हन्त्य ७. परमनिर्वाण ।

ये क्रियाएँ पुण्य करने वाले लोगों को प्राप्त हो सकती हैं और जो समीचीन मार्ग की आराधना करने के फलस्वरूप प्रवृत्त होती हैं।

पर्याप्तियाँ, प्राण और कर्मोदय

पर्याप्तियाँ गर्भ में माँ के संस्कार से नहीं अपितु पूर्व कर्मानुसार घटित होती हैं। शरीर रक्त आदि भी पूर्व कर्मानुसार ही पड़ते हैं। वज्रवृषभनाराच संहनन या अन्य संहनन, इन्द्रियों की संरचना हो या मन, वचन, काय की श्रेष्ठता एवं हीनता सब कर्मानुसार ही होती है। पर्याप्तियाँ और प्राणों की पूर्णता के बाद माँ के संस्कार प्रभावी होते हैं। प्रबल कर्मोदय की स्थिति में संस्कारित माँ के परिणाम भी गर्भस्थ शिशु के कारण बिगड़ते देखे गये हैं, किन्तु संस्कारित माँ का प्रभाव भी शिशु के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। वह तीव्र कर्मोदय में भी सम्यक् आचरण से कर्मों को हीनाधिक करने में समर्थ है। कर्मोदय में निमित्त शरीर की कुछ संरचना गर्भ में होती है, जैसे बन्ध्या स्त्री की शंखावर्त योनि की संरचना गर्भ में ही होती है। जिससे सबल प्रयत्न करने पर भी सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकती है। तीनों लिंगों की संरचना गर्भ में ही कर्मानुसार निर्धारित होती है। मोक्षमार्ग में साधक वज्रवृषभ नाराच संहनन एवं समचतुरस्रसंस्थान आदि की संरचना गर्भ में ही होती है। तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता मात्र से गर्भ में आने के छह माह पूर्व से जन्म तक रत्नों की वर्षा का होना, सुमेरु पर्वत

पर जन्माभिषेक होना, जन्म से ही तीन ज्ञान होना, जन्म के दस अतिशयों का होना आदि क्रियाएँ स्वयमेव होती हैं।

कर्मों की सत्ता एवं उदय के संस्कार से आत्मा की परिणति विकृत होती है। वह शुद्ध चैतन्य को जानता हुआ भी और अन्य पदार्थों से भिन्न अनुभव करता हुआ भी पूर्वकर्म, भ्रान्ति के संस्कार वश पुनरपि भ्रान्ति को प्राप्त होता है। अतः आत्म विकास के पथ में कर्मोदय एवं संस्कार अहं भूमिका निभाते हैं। वंशानुक्रम और माँ के संस्कार-पर्याप्तियाँ कर्मानुसार पूर्ण होती हैं। जब मन पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है और जीव उपदेशादि ग्रहण करने लगता है, तब माँ के संस्कार प्रभावी होते हैं। वंशानुक्रम पिता के संस्कार हैं, जिसका कर्मों से निमित्त नैमित्तिक संबन्ध है। शरीरादि नोकर्म हैं। ये कर्मोदय एवं कर्मफल आदि में निमित्त होते हैं। प्रमुखता कर्मों की होती है। पिता को होने वाले रोग पुत्र को भी होते देखे जाते हैं माँ के सुसंस्कार कर्मों को हीनाधिक करने में निमित्त हो सकते हैं, किन्तु आवश्यक नहीं कि प्रत्येक गर्भस्थ पर माता-पिता के संस्कार समान रूप से पड़ते ही हों। संस्कारवान् माता-पिता गर्भस्थ शिशु को संस्कार देने के लिए सजग रहते हैं, वे ही शिशु संस्कारवान् बन पाते हैं। इस प्रक्रिया का आदर्शरूप तीर्थंकर की माता है, जिनकी देवियों द्वारा सेवा, संस्कार को विधि प्रशंसनीय होती है। गर्भावस्था में माँ की भूमिका बालक के विकास की आधारशिला रखती है। गर्भ में भी शिशु मन पर्याप्ति पूर्ण होने पर माँ से संस्कार ग्रहण करने लगता है। ये माँ का विषय है कि वह कैसा आचरण करती है ? अतः माँ को गर्भावस्था में श्रेष्ठ संस्कारों के लिए सदाचरण करना चाहिए।

परिवर्तनशील संसार का प्रमुख आधार जन्म और मृत्यु है। पूर्व कर्म उदय अनुसार जीव नवीन भव धारण करता है। उसके शरीर की संरचना नाम कर्म के उदय से होती है। उसमें बाह्य वातावरण बनता है। यदि उस समय उसे संस्कारित किया जाए तो वह जीव भी योग्य बन सकता है। जैनदर्शन में आचार्यों ने गर्भ में आने के समय से ही संस्कार देने का उल्लेख किया है। आदिपुराण में आचार्य जिनसेन स्वामी ने गर्भाधान से मरण पर्यन्त १०८ संस्कारों का विस्तृत वर्णन किया है।

ये क्रियाएँ पुण्य करने वाले लोगों को प्राप्त हो सकती हैं जो समीचीन मार्ग की आराधना करने के फलस्वरूप प्रवृत्त होती हैं अतः इनमें से कुछ महत्वपूर्ण क्रियाओं के संस्कार की विधि का वर्णन यहाँ किया जा रहा है जो अन्य संप्रदायों में १६ संस्कारों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

❑ ❑ ❑

1. आधान (गर्भाधान)-क्रिया/संस्कार

विवाह के उपरांत गर्भाधान क्रिया सम्पन्न होती है। स्त्री के उदर में जो रज और वीर्य मिलकर गर्भ ठहरता है उस गर्भ धारण की योग्यता को गर्भाधान कहते हैं। वह जिन कारणों से प्रकट होती है, उन कारणों से गर्भाधान शक्ति को जानकर जो क्रिया की जाती है, वह गर्भाधान क्रिया है। जैसे महल की स्थिरता नींव के संस्कार से प्रारंभ होती है, वैसे गर्भाधान के संस्कारों से ही मन वचन और

शरीर के साथ-साथ आत्मा की शुद्धि के संस्कार प्रारम्भ हो जाते हैं। यही एक कारण है कि तीर्थंकर के गर्भ में आने के छह माह पहले से देवियाँ आकर गर्भ शोधन आदि गर्भाधान संस्कार करने लगती हैं और गर्भ के लगभग नव माहों तक भी माता की सम्पूर्ण संस्कारों के साथ सेवा करती हुईं तीर्थंकर बालक के संस्कारों का ध्यान रखती हैं। गर्भाधान संस्कार से बालक शारीरिक, मानसिक रूप से बलिष्ठ, दीर्घायु, स्वस्थ, नीरोग एवं शीघ्र बौद्धिक विकास करने वाला होता है। विचार करने वाली बात यह है की तीर्थंकर बालक की जन्म की पूर्व से ही सम्पूर्ण वातावरण संस्कार में हो जाता है तब कहीं जाकर तीर्थंकर बालक का जन्म होता है किन्तु आज की माताएँ संस्कारों के प्रति उदासीन हैं और चाहती है कि हमारा बालक तीर्थंकर जैसा संस्कारवान् उत्पन्न हो यह कैसे संभव है इसलिए हमें विचार करना चाहिए कि संस्कारों के प्रति हम जागृति लाएँ अतः प्रथम गर्भाधान क्रिया का शास्त्रीय प्रमाण के साथ उल्लेख किया जा रहा है।

गर्भाधान क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. गर्भाधान कर्त्ता पति-पत्नी को दुखी या उदास मन से नहीं अपितु भय मुक्त प्रसन्नचित्त एवं उत्साही होकर करना चाहिए।

२. गर्भाधान क्रिया बाल, वृद्ध या रोगी नहीं अपितु जवान एवं स्वस्थ लोगों को करना चाहिए क्योंकि जिस रोग से पीड़ित होकर गर्भाधान क्रिया की जाती है संतान उसी रोग से पीड़ित उत्पन्न होती है जैसे रोते हुए गर्भाधान करने से संतान नेत्र विकार सहित उत्पन्न होती है।

३. पर्व, व्रत-उपवास के दिनों में, तीर्थ क्षेत्रों में और अनुष्ठान आदि में नहीं उचित समय में करना चाहिए।

४. यदि पति-पत्नी में से किसी एक की भी इच्छा न हो तो नहीं अपितु एक दूसरे की सहमति से करना चाहिए।

५. मलमास, क्षय तिथि, अधिक तिथि, इन्द्रधनुष, सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण या संक्रान्ति आदि अशुभ समयों में गर्भाधान नहीं अपितु शुभ समय में करना चाहिए।

६. दूषित भूमि श्मशान, पार्क, खेत, वृक्ष के नीचे, जल में, बिना द्वार के भवन आदि अनुचित स्थान में गर्भाधान नहीं अपितु उचित स्थान में करना चाहिए।

७. मासिक धर्म (माहवारी) के समय नहीं करना चाहिए।

८. बीड़ी, तम्बाकु, सिगरेट, शराब आदि नशीले पदार्थों का सेवन करते हुए गर्भाधान क्रिया करने से बचना चाहिए क्योंकि अगर व्यसन करते हुए गर्भाधान क्रिया की जाएगी तो संतान व्यसनी उत्पन्न होगी।

९. गर्भाधान संस्कार के पूर्व एवं बाद में प्रतिदिन देवदर्शन पूजन दान स्वाध्याय त्याग आदि धार्मिक क्रियाओं में संलग्न रहना चाहिए।

१०. गर्भाधान क्रिया धार्मिक संस्कारों/अनुष्ठानों को विधि विधान पूर्वक ही करना चाहिए।

(परिजनों के द्वारा आगंतुक महानुभावों का भोजन एवं वस्त्राभूषण आदि से सत्कार करते हुए गर्भाधान क्रिया सम्पन्न करना चाहिए)

आधान (गर्भाधान)-क्रिया (संस्कार) विधि-

आधानं नाम गर्भादौ संस्कारो मंत्रपूर्वकः।
पत्नीं ऋतुमतीं स्नातां पुरस्कृत्यार्हदित्यया ॥ ७०॥
तत्रार्चनविधी चक्रत्रयंछत्रत्रयान्वितम्।
जिनार्चामभितः स्थाप्यं समं पुण्याग्निभिस्त्रिभिः ॥ ७१॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

चतुर्थ स्नान के द्वारा शुद्ध हुई रजस्वला पत्नी को आगे कर गर्भाधान के पहले अर्हंत देव की पूजा के द्वारा मंत्र पूर्वक जो संस्कार किया जाता है, वह आधान क्रिया है। इस क्रिया की पूजा में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दाहिनी ओर तीन चक्र, बायीं ओर तीन छत्र और सामने तीन पवित्र अग्नि स्थापित करें।

वन्दनमालिका सध्या मणिमुक्तादि निर्मिता।
गृहद्वारायां परं रम्या किंकिण्यादि विभूषिता ॥

घर के द्वार पर, मंदिर में, वेदी में वन्दनवार बाँधे और रंगोली आदि सजावट भी करवाएँ। शुभमुहूर्त में सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्नान की हुई गर्भाधान करवाने वाली स्त्री और उसके पति को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर मंगल कलश से सहित जिनमन्दिर ले जाकर देवदर्शन-पूजन के उपरान्त गृहस्थाचार्य के निर्देशानुसार क्रिया करें। मंदिर के योग्य क्रियाएँ मंदिर में एवं घर के योग्य क्रियाएँ घर में करना चाहिए।

जाप्य मंत्र

(निम्नलिखित मंत्र का जाप १०८ बार करें)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्वसिद्धिप्रदेभ्यो जिनेभ्यो नमो नमः।

(निम्नलिखित प्रत्येक मंत्र के बाद दम्पती पर पुष्प या जल सिंचन करें।)

सज्जातिभागी भव।

सद्गृहिभागी भव।

मुनीन्द्रभागी भव।

सुरेन्द्रभागी भव।

परमराज्यभागी भव ।

आर्हन्त्यभागी भव ।

परमनिर्वाणभागी भव ।

(तदुपरांत हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें।)

ॐ ह्रीं श्री जिनप्रसादात् मम सत्पुत्रो भवतु स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर स्त्री के उदर पर जल के छींटे देना चाहिए।

दोनों स्त्री-पुरुष वेदी सहित हवन कुण्ड की तीन परिक्रमा देकर अपने स्थान पर बैठें।

तुम्हारे सम्बन्ध से हमारा वंश वृद्धिंगत हो।

सौभाग्यवती स्त्रियाँ उन दोनों पर अक्षत और जल छिड़क कर आशीर्वाद दें एवं वस्त्राभूषण आदि देकर सत्कार करें उन्हें घर भेज देना चाहिए।

❑ ❑ ❑

2. प्रीति क्रिया/संस्कार

गर्भस्थ शिशु के प्रति वात्सल्य एवं उसे सुसंस्कार देने का भाव रखना प्रीति संस्कार है। इस अवस्था में माँ के स्नेह, प्रीति, प्रसन्नता एवं संस्कारित सन्तान उत्पन्न करने की भावना आने वाली सन्तान को पुष्टता प्रदान करती है। गर्भवती को गर्भस्थ शिशु, परिजन एवं जिनेन्द्र भगवान की भक्ति पूजा-पाठ, आराधना एवं स्वाध्याय में प्रीति करना चाहिए, जिससे गर्भस्थ शिशु का बौद्धिक विकास हो।

गर्भाधानात्परं मासे तृतीयं संप्रवाते।
प्रीतिर्नामक्रिया प्रीतैर्याऽनुष्ठेया द्विजन्मभिः ॥ ७७ ॥
तत्रापि पूर्ववन्मंत्रपूर्वा पूजा जिनेशिनाम्।
द्वारितोरणविन्यासः पूर्णकुम्भी च सम्मतौ ॥ ७८ ॥
तदादि प्रत्यहं भेरी शब्दो घण्टास्वनान्वितः।
यथा विभवमेवैतैः प्रयोज्यो गृहमेधिभिः॥ ७९॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

प्रीति क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. माँ प्रसन्न चित्त रहे, कलह से बचे इस हेतु परिजनों को वातावरण निर्मित करना चाहिए।

२. स्वास्थ्यवर्धक एवं सात्विक विचारधारा का भोजन करें।

३. माँ नाखून न बढ़ाए, हिंसक सौंदर्य प्रसाधन सामग्री से बचे क्योंकि माँ के इत्र, लिपस्टिक, नेलपॉलिश हिंसक सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री आदि का उपयोग करने से शिशु रोगी होता है।

४. गर्भवती स्त्री को विश्वकल्याण की भावना भानी चाहिए।

५. प्रतिदिन दर्शन-पूजन दान-त्याग एवं स्वाध्याय करते हुए पवित्र विचार रखना चाहिए।

६. संतान के जन्म होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

७. गर्भपात जैसी महापाप कराने के भाव भी मन में नहीं आने देने चाहिए।

८. अनावश्यक औषधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

९. गर्भावस्था से ही शिशु को संस्कार देने के उद्देश्य से परिणामों को निरंतर विशुद्ध बनाने का प्रयास करना चाहिए।

१०. बैर-क्रोध-प्रतिशोध आदि कलुषित भावों को नहीं आने देना चाहिए एवं ऐसे कार्य करना चाहिए जिससे गर्भिणी स्त्री को गर्भस्थ शिशु के प्रति आमोद-प्रमोद बढ़े।

(परिजनों के द्वारा आगंतुक महानुभावों का भोजन एवं वस्त्राभूषण आदि से सत्कार करते हुए प्रीति क्रिया सम्पन्न करना चाहिए)

प्रीति क्रिया/संस्कार की विधि-

गर्भाधान के उपरांत तृतीय माह में प्रीति संस्कार किया जाता है। इस क्रिया में भी पहले की क्रिया के समान मंत्र पूर्वक जिनेन्द्रदेव की पूजा करनी चाहिए। द्वार पर तोरण बँधवाना तथा दो पूर्ण कलश स्थापन करना चाहिए। इस दिन से लेकर गृहस्थों को प्रतिदिन अपने वैभव के अनुसार घंटा नगाढ़े बजवाने चाहिए।

वन्दनमालिका सध्या मणिमुक्तादि निर्मिता।

गृहद्वारायां परं रम्या किंकिण्यादि विभूषिता ॥

घर के द्वार पर, मंदिर में, वेदी में वन्दनवार बाँधे और रंगोली आदि सजावट भी करवाएँ एवं मंगल वादित्रों की ध्वनि करें।

ॐ ह्रीं वन्दनमाला बध्नामि स्वस्ति भवतु।

घर के मुख्यद्वार के दोनों ओर मंगलकलश स्थापन करें।

ॐ ह्रीं निज गृहमुखद्वारे उभयपार्श्वे मंगलकलश स्थापनं करोमि।

(चौक बनाकर पाटे पर गर्भवती को बिठाकर निम्न मंत्र पढ़ते हुए उस पर जल के छींटे व गर्भस्थ शिशु की रक्षार्थ पुष्प क्षेपण करना चाहिए।)

वं ठं हः पः

(निम्न मंत्र पढ़कर गर्भवती को गन्धोदक देना चाहिए या गर्भिणी को स्वयं अपने हाथ से गन्धोदक लगा लेना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा गर्भार्भकं प्रमोदेन परिरक्षत परिरक्षत स्वाहा।

(निम्न मंत्रों का उच्चारण करते हुए उदर पर अक्षत पुष्प क्षेपण करना चाहिए।)

त्रैलोक्यनाथो भव ।

त्रैकाल्यज्ञानी भव ।

त्रिरत्नस्वामी भव ।

ॐ ह्रीं श्री जिनप्रसादात् मम सत्पुत्रो भवतु स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर स्त्री के उदर पर जल के छींटे देना चाहिए। (तदुपरांत हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें।)

❑ ❑ ❑

3. सुप्रीति (पुंसवन) क्रिया/संस्कार

मासेण पंच पुलगा तत्तो हुंति हु पुणो वि मासेण।
अंगाणि उवगांणि य णरस्स जायंति गब्भम्मि॥

(१००३, भगवती आराधना)

गर्भाधान के उपरांत पंचम माह में सुप्रीति क्रिया की जाती है। गर्भ में स्थित माता का रज और पिता का वीर्य रूप बीज दस दिन तक कलल रूप में, दस दिन तक कालिमा रूप में, एवं दस दिन तक स्थिर अवस्था में रहता है। इसके पश्चात् एक माह तक बुलबुले की तरह, एक माह तक घनभूत अर्थात् कठोर रूप एवं एक माह में मांस के पिण्ड रूप होता है।

पाँचवें माह में उस मांस पिण्ड में से दो हाथ, दो पैर और सिर के रूप में पाँच अंकुर निकलते हैं। छठे माह में उसके अंग और उपांग बनते हैं।

(अंग-दो पैर, दो हाथ, एक नितम्ब, एक छाती, एक पीठ और एक सिर। उपांग- कान, नाक, गाल, ओंठ, आँख और अंगुलि आदि।)

अतः गर्भवती को प्रीति पूर्वक शिशु के संरक्षण, संवर्द्धन एवं संस्कारित करने का भाव होना सुप्रीति-संस्कार है। गर्भवती के मन, वचन और काय की क्रियाओं के अनुसार शिशु के अंगोपांग निर्मित होते हैं। सुप्रीति क्रिया/संस्कार से गर्भवती को प्रशस्त/प्रसन्न रखने का प्रयास किया जाता है जिससे बालक सर्वांग सुन्दर एवं बलवान होता है।

आधानात् पंचमे मासि क्रिया सुप्रीतिष्यिते ।
या सम्प्रीतैः प्रयोक्तव्या परमोपासकव्रतैः ॥ ८०॥
तत्राप्युक्तो विधि पूर्वः सर्वोर्हेत्बिम्बसन्निधौ।
कार्योमंत्रविधानज्ञै साक्षी कृत्याग्निदेवता ॥ ८॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

सुप्रीति (पुंसवन) क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. घर के कलह, तनावपूर्ण वातावरण को समाप्त कर प्रसन्नता पूर्ण वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

२. गर्भवती प्रसन्न रहे इस हेतु परिजनों को प्रयास करना चाहिए।

३. गर्भवती को सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने से बचना चाहिए।

४. गर्भवती को ऊँची एड़ी की चप्पल नहीं पहनना चाहिए अपितु ढीले कपड़े पहनने चाहिए।

५. गर्भवती को भोजन (चौका चूल्हा) संबंधी वजनदार कार्यों से बचना चाहिए।

६. गर्भवती को कोई भी भारी वजन नहीं उठाना-रखना चाहिए।

७. गर्भवती को पेट के बल नहीं लेटना चाहिए और ना ही पेट पर कोई भारी वजन रखना चाहिए।

८. गर्भवती को महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने चाहिए एवं दूषित साहित्य, फिल्म, टेलीविजन, मोबाइल आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

९. गर्भवती को दान-पूजा, स्वाध्याय आदि धार्मिक वातावरण में लीन रहना चाहिए।

१०. गर्भवती को अनावश्यक बातें बैर-विरोध, प्रतिशोध एवं विकथाएँ नहीं करना चाहिए।

जिनेन्द्र भगवान की स्तुति पढ़ें और शुभ भावना कर शक्त्यानुसार दान दें एवं इस दिन से लेकर गृहस्थ को प्रतिदिन अपने घर में गीत संगीत वादित्र का आयोजन करना चाहिए।

सुप्रीति (पुंसवन) क्रिया/संस्कार की विधि–

गर्भाधान से पंचम माह में सुप्रीति क्रिया प्रसन्न हुए उत्तम श्रावकों द्वारा की जाती है। इस क्रिया में भी मंत्र और क्रियाओं को जानने वाले श्रावकों को अग्नि तथा देवता की साक्षी कर अरिहंत भगवान की प्रतिमा के समीप पहले कही हुई समस्त विधि करनी चाहिए।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए गर्भवती पर जल के छींटे देते हुए गर्भ की पुष्टि के लिए उदर पर इस मंत्र की स्थापना कर सात बार पढ़कर गन्धोदक देना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा ठः ठः हाः वषट् स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए गर्भवती पर अक्षत क्षेपण करना चाहिए)

अवतार कल्याणभागी भव ।

निष्क्रान्ति कल्याणभागी भव ।

आर्हन्त्यकल्याण भागी भव ।

परमनिर्वाणकल्याण भागी भव ।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए पति को अपनी गर्भवती पत्नी को यवमाला पहनाना, सिन्दूर और काजल अवश्य लगाना चाहिए।)

झं वं ह्वीं क्ष्वीं हं सः कान्तागले यवमालां क्षिपामि झ्रौं स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्री जिनप्रसादात् मम सत्पुत्रो भवतु स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर स्त्री के उदर पर जल के छींटे देना चाहिए।

(तदुपरांत हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें।)

❑ ❑ ❑

4. धृति क्रिया/संस्कार

मासम्मि सत्तमे तस्स होदि चम्मणहरोमणिप्पत्ती ॥
दणमट्ठममासे णवमे दसमे य णिग्गमणं॥

(१००४-भगवती आराधना)

सप्तम माह में उस गर्भस्थ पिण्ड पर चर्म, नख और रोम बनते हैं। अष्टम माह में उसमें हलन-चलन होने लगती है। नवम अथवा दसम माह में उसका जन्म होता है, अतः सप्तम माह में मन की स्थिरता के लिए धृति संस्कार किया जाता है।

गर्भ बढ़ने एवं हलन-चलन से शारीरिक-विषमता के कारण परिणाम विचलित न हो, अतः धैर्य धारण करने एवं गर्भ की पुष्टता के लिए जहाँ शरीर की स्वस्थता अनिवार्य है, वहीं मानसिक प्रसन्नता भी आवश्यक होती है अतः गर्भवती की प्रसन्नता एवं धार्मिक वातावरण से मन को दृढ़ता प्रदान करने के लिए धृति संस्कार किया जाता है। गर्भवती की इस अवस्था में स्वप्न और दोहला उत्पन्न होते हैं जिससे गर्भस्थ शिशु के भविष्य, प्रकृति एवं व्यक्तित्व के विषय की जानकारी होती है इससे इस संस्कार के माध्यम से गर्भवती का मन विशुद्ध व धैर्य युक्त हो जाता है।

धृति संस्कार की सावधानियाँ-

१. घर के कलह/तनावपूर्ण वातावरण को समाप्त कर प्रसन्नता पूर्ण वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

२. गर्भवती प्रसन्न रहे इस हेतु परिजनों को प्रयास करना चाहिए।

३. गर्भवती को सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने से बचना चाहिए।

४. गर्भवती को ऊँची एड़ी की चप्पल नहीं पहनना चाहिए अपितु ढीले कपड़े पहनने चाहिए तथा बाजार में घूमने एवं लम्बी यात्राएँ करने से बचना चाहिए।

५. गर्भवती को भोजन (चौका चूल्हा) संबंधी वजनदार कार्यों से बचना चाहिए।

६. गर्भवती को झुकने से बचना चाहिए एवं कोई भी भारी वजन नहीं उठाना-रखना चाहिए।

७. गर्भवती को पेट के बल नहीं लेटना चाहिए और ना ही पेट पर कोई भारी वजन रखना चाहिए एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

८. गर्भवती को भगवान की भक्ति, पूजा, पाठ आदि में मन लगाकर महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने चाहिए एवं दूषित साहित्य, फिल्म, टेलीविजन मोबाइल आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

९. गर्भवती को दान-पूजा, स्वाध्याय आदि धार्मिक वातावरण में लीन रहना चाहिए।

१०. गर्भवती को अनावश्यक बातें बैर-विरोध, प्रतिशोध एवं विकथाएँ नहीं करते हुए अपने से बड़ों का मान-सम्मान, बहुमान करते हुए प्रसन्नता का अनुभव करना चाहिए।

धृति क्रिया/संस्कार विधि-

धृतिस्तु सप्तमे मासि कार्या तद्वत्क्रियादरैः।
गृहमेधि भिरव्यग्रमनाभि गर्भवृद्धयः॥ ८२॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

जिनका आदर किया गया है और जिनका चित्त व्याकुल नहीं है ऐसे गृहस्थों को गर्भ की वृद्धि के लिए गर्भ से सप्तम माह में पूर्व की क्रियाओं के समान ही धृति नामक क्रिया करनी चाहिए।

शुभमुहूर्त में सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्नान की हुई स्त्री और उसके पति को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर मंगल कलश के सहित जिनमन्दिर ले जाएँ। देवदर्शन के उपरान्त गृहस्थाचार्य के निर्देशानुसार मन्दिर में जिनेन्द्र भगवान की पूजन पूर्वक या घर में यंत्र के सामने समस्त क्रिया करें।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए गर्भवती पर जल के छींटे देते हुए मंगलसूत्र पहनाकर सिन्दूर से मांग भरना चाहिए।)

नमो भगवते मंगलसूत्रेण बहुपुत्रा भवितुमर्हा स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए गर्भवती पर केशर चन्दन मिश्रित गन्धोदक के छींटे देना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अस्याः गर्भ रक्ष रक्ष स्वाहा।

(निम्न मंत्रों के बाद दम्पती पर पुष्प क्षेपण या जल का सिंचन करना चाहिए।)

सजातिदातृ भागी भव।
सद्गृहिदातृभागी भव।
मुनीन्द्रदातृभागी भव।
सुरेन्द्र दातृभागी भव।
परमराज्यदातृभागी भव ।
आर्हन्त्यदातृभागी भव।
परमनिर्वाणदातृभागी भव।
ॐ ह्रीं श्री जिनप्रसादात् मम सत्पुत्रो भवतु स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर स्त्री के उदर पर जल के छींटे देना चाहिए।
(तदुपरांत हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें।)

❑ ❑ ❑

5. मोद (सीमन्तनी) क्रिया/संस्कार (गोद भराई)

नवम माह में की जाने वाली क्रिया को मोद क्रिया कहते हैं। गर्भावस्था की पीड़ा का विस्मरण, शिशु के आने का उत्साह एवं माँ बनने का कर्त्तव्य बोध कराने के लिए गर्भवती को वस्त्राभूषण प्रदान कर उसके मन को प्रसन्न रखना मोद क्रिया/संस्कार कहलाता है। माँ की प्रसन्नता से गर्भस्थ बालक ऊर्जावान बनता है अतः प्रसव पीड़ा सहजता से हो जाती है।

इस संस्कार में गर्भवती को गोद में मांगलिक द्रव्य, मेवा, वस्त्र, आभूषण से भरकर शिशु के आने की कामना की जाती है। माँग में सिन्दूर भरने की क्रिया करने से इसे सीमन्तनी क्रिया कहा जाता है।

नवमे मास्यतोऽभ्यर्णे मोदो नाम क्रिया विधिः ।
तद्वदेवादृतैः कार्यो गर्भपुष्ट्यै द्विजोत्तमैः ॥ ८ ३॥
तत्रेष्टो गात्रिका बन्धो मांगल्यं च प्रसाधनम् ।
रक्षासूत्रविधानं च गर्भिण्या द्विन सत्तमैः ॥ ८४ ॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

मोद क्रिया/संस्कार (गोद भराई) की सावधानियाँ-

१. गर्भवती स्त्री को सात्विक, हल्का एवं सुपाच्य भोजन करना चाहिए।

२. गर्भवती स्त्री को गरिष्ठ आहार से तो बचना चाहिए किंतु पौष्टिक आहार लेना अत्यन्त आवश्यक है।

३. गर्भवती स्त्री को मादक पदार्थों के सेवन से बचना चाहिए।

४. गर्भवती स्त्री को गर्म, चरपरा एवं तीखा भोजन करने से बचना चाहिए।

५. गर्भवती स्त्री को चिल्लाने से, जोर से बोलने से और जोर से हँसने से बचना चाहिए ।

६. गर्भवती स्त्री को हिंसक सौंदर्य प्रसाधन सामग्री एवं उबटन आदि के प्रयोग से बचना चाहिए।

७. गर्भवती स्त्री को गर्भस्थ शिशु की सुरक्षा एवं वृद्धि की भावना करना चाहिए।

८. गर्भवती स्त्री को शादी, पार्टी, मेला आदि भीड़ वाली जगहों पर जाने से बचना चाहिए।

९. गर्भावस्था में माता के विचारों एवं खान-पान का गर्भस्थ बालक पर प्रभाव पड़ता है अत: प्रत्येक विषय में सावधानी रखना चाहिए।

१०. गर्भवती स्त्री को विकथा, मादक द्रव्यों का सेवन, कामुक चर्चा एवं चर्या से बचना चाहिए।

(गर्भिणी स्त्री को प्रतिदिन **ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा नम:** इस मंत्र की जाप करना चाहिए।)

[नोट-यदि गर्भाधान संस्कार क्रमश: न हुए हों तो इस क्रिया के साथ उन सभी संस्कारों के मंत्र व क्रियाएँ कर लेना चाहिए।]

मोद क्रिया/संस्कार (गोद भराई) की विधि-

नवम माह में पिछली क्रियाओं के समान आदर युक्त गृहस्थाचार्य के द्वारा गर्भ की पुष्टि के लिए मोद क्रिया की जाती है।

इस क्रिया में गृहस्थाचार्य को गर्भिणी के शरीर पर गात्रिका बन्धन, मंत्रपूर्वक बीजाक्षर लिखना, मंगलमय आभूषण पहनाना और रक्षा के लिए कंकणसूत्र बाँधने की विधि करनी चाहिए।

शुभमुहर्त में सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्नान की हुई स्त्री और उसके पति को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर मंगल कलश के सहित जिन मन्दिर ले जाएँ। देवदर्शन के उपरान्त गृहस्थाचार्य के निर्देशानुसार मन्दिर में जिनेन्द्र पूजन कर भगवान के सामने या घर में यंत्र के सामने समस्त क्रिया करनी चाहिए।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए गर्भवती पर जल, पुष्प एवं अक्षत क्षेपण करना चाहिए।)

सज्जाति कल्याण-भागी भव।
सद्‌गृहि कल्याण-भागी भव।
वैवाह कल्याण-भागी भव।
मुनीन्द्र कल्याण-भागी भव।
सुरेन्द्र कल्याण-भागी भव।
मन्दराभिषेक कल्याण-भागी भव।
यौवराज्य कल्याण-भागी भव।
महाराज्य कल्याण-भागी भव।
परमराज्य कल्याण-भागी भव।
आर्हन्त्य कल्याण-भागी भव।

(तदुपरांत हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें।)

ॐ ह्रीं श्री जिनप्रसादात् मम सत्पुत्रो भवतु स्वाहा।

यह मंत्र पढ़कर स्त्री के उदर पर जल के छींटे देना चाहिए।

(निम्न मंत्र से सात बार मन्त्रित कर कच्चा धागा गर्भिणी के कण्ठ में मालारूप में पहनाना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा श्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं गात्रिका बन्धन करोमि स्वाहा।

ॐ ह्रीं नमोऽर्हते सर्व रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

(रक्षासूत्र बाँधे।)

गर्भिणी स्त्री को चौक बनाकर पाटे पर पति के साथ पूर्व या उत्तर मुख करके बैठाकर स्त्री की गोद में सौभाग्यवती स्त्रियों को श्रीफल, मेवा, आभूषण, वस्त्र, रुपये आदि मांगलिक द्रव्य मंगल गीत गाते हुए डालने चाहिए। आगंतुक सभी महानुभावों को भोजन कराएँ सत्कार करें एवं हर्ष मनाएँ।

❑ ❑ ❑

6. प्रियोद्भव (जातकर्म) क्रिया/संस्कार

जन्म के समय की जाने वाली क्रिया को प्रियोद्भव या जातकर्म क्रिया/संस्कार कहते हैं। तीर्थंकर बालक के जन्म कल्याणक में जैसे सौधर्म इन्द्र अनेक लोक मांगलिक क्रियाएँ करता है, ठीक वैसे ही संस्कारित मनुष्य अपने शिशु के जन्म के समय प्रसन्नता पूर्वक जन्मोत्सव मनाते हुए उसके धार्मिक, संस्कारित एवं यशस्वी जीवन को मांगलिक बनाने की कामना करते हैं। इस प्रकार परिवार में नये सदस्य के आने पर धार्मिक एवं मांगलिक विधियों के द्वारा बालक के जन्म के समय हर्ष व्यक्त करना प्रियोद्भव (जातकर्म) क्रिया/संस्कार है।

प्रियोद्भय (जातकर्म) क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. प्रसूति, योग्य एवं कुशल चिकित्सक से कराएँ।

२. सद्य प्रसूत शिशु को अनेक लोग न छुएँ।

३. जातकर्म (प्रियोद्भव) संस्कार क्रिया, मृतक के काल में स्वयं न करें, अन्य लोगों से कराएँ।

४. जन्मोत्सव मनाते समय अहिंसा धर्म का पालन करें।

५. जातकर्म (प्रियोद्भव) संस्कार के समय दान अवश्य दें।

६. प्रसूत शिशु को माँ का दूध अवश्य पिलाएँ।

७. पाउडर का दूध एवं बोतल से दूध पिलाना शिशु को हानिकारक है।

८. प्रसूति कक्ष में सफाई रखें।

९. शिशु को दूध पिलाते समय आश्च मनःस्थिति एवं भावों को विशुद्ध रखें।

१०. यदि माँ किसी रोग से ग्रसित है तो डॉक्टर की सलाह से ही शिशु को दूध पिलाएँ।

प्रियोद्भव (जातकर्म) क्रिया/संस्कार विधि-

प्रियोद्भव प्रसूतायां जातकर्मविधिः स्मृतः।
जिनजातक माध्याय प्रवर्त्यो यथाविधि॥८५॥
अवान्तरविशेषोऽत्र क्रियामंत्रादिलक्षणः।
भूयान्समस्त्यसौ ज्ञेयो मूलोपासक समत्रतः।।८६॥

(आदिपुराण पर्व- ३८)

प्रसूति होने पर प्रियोद्भव नाम की क्रिया की जाती है। इसका दूसरा नाम जातकर्म विधि भी है। यह क्रिया जिनेन्द्र भगवान का स्मरण कर विधि पूर्वक करनी चाहिए। पुत्र या पुत्री का जन्म होते ही जिनालय

तथा अपने दरवाजे पर बाजे बजवाना चाहिए। भिक्षुओं को दान एवं बन्धुवर्ग को वस्त्र आभूषण मिष्ठान्न आदि वितरित करना चाहिए।

निम्न मंत्रों को पढ़ते हुए एवं गंधोदक सिंचन करते हुए नवजात शिशु को पिता आशीर्वाद देते हुए शिर का स्पर्श करते हुए कहे कि यह तेरी माता कुल, जाति, अवस्था, रूप गुणों से सहित है, शीलवती, सन्तानवती, सौभाग्यवती, अवैधव्य से युक्त, सौम्यशान्त मूर्ति से सहित और सम्यग्दृष्टि है। इसलिए हे पुत्र इस माता के सम्बन्ध से तू भी अनुक्रम से दिव्यचक्र, विजयचक्र और परमचक्र तीनों चक्रों को पाकर सत्प्रीति को प्राप्त हो। इस प्रकार आशीर्वाद देकर पिता उसके समस्त अंगों का स्पर्श करें।

दिव्य नेमिविजयाय स्वाहा ।

परम नेमिविजयाय स्वाहा ।

आन्य नेमिविजयाय स्वाहा।

(निम्न मंत्र सात बार पढ़कर पिता को नवजात शिशु पर केशर चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों के छींटे देना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा ह्रां श्रीं क्लीं ओं आं क्रौं क्ष्वीं एवं बालं रक्ष रक्ष स्वाहा।

यह मैं ही हूँ ऐसा आरोप कर नीचे लिखे सुभाषित पढ़ें हे! पुत्र तू मेरे अंग-अंग और हृदय से उत्पन्न हुआ है, इसलिए तू पुत्र नाम को धारण करने वाला मेरा आत्मा ही है। तू सैकड़ों वर्षों तक जीवित रह। इस प्रकार करते हुए पिता को दूध और घी रूपी अमृत उसकी नाभि में डालते हुए निम्न मंत्र पढ़ते हुए नाभि का नाल काटना चाहिए।

घातिञ्जयो भव ।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक के शरीर का उबटन करना चाहिए।)

हे जाता, श्रीदेव्यः ते जातक्रियां कुर्वन्तु।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए सुगन्धित जल से सावधानीपूर्वक स्नान कराना चाहिए।)

त्वं मन्दराभिषेकार्हो भव।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए एवं आशीर्वाद देते हुए शिशु पर अक्षत क्षेपण करना चाहिए।)

चिरं जीव्याः ।

(निम्न मंत्र पढ़कर बालक के मुख और नाक में औषधि मिलाकर तैयार किया हुआ घी मात्रानुसार डालना चाहिए।)

नश्यात् कर्ममलं कृत्स्नम्।

(निम्न मंत्र पढ़कर बालक के मुख में घी दूध और मिश्री मिलाकर सोने की चम्मच या सोने के किसी वर्तन से पाँच बार पिलाना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नानानुजानुप्रजो भव भव अ सि आ उ सा स्वाहा ।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए माता के स्तन को बालक के मुँह से लगाकर प्रीति पूर्वक दान देते हुए उत्सव करना चाहिए।)

विश्वेश्वरीस्तन्य भागी भव ।

(निम्न मंत्र पढ़कर भूमि में जल और अक्षत डालकर गर्भमल, जरायु-पटल एवं नाभि-नाल डालकर पञ्चरत्न रखना चाहिए।)

सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे सर्वमातः सर्वमातः वसुन्धरे वसुन्धरे स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़कर खेत में गड्ढा खोदकर गर्भमल डाल देना चाहिए।)

त्वत्पुत्रा इव मत् पुत्राः चिरंजीविनां भूयासुः।

(निम्न मंत्र पढ़कर बालक की माता को क्षीर वृक्ष की डालियों से सुशोभित मंडप भूमि पर बैठाना चाहिए।)

सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्ये आसन्नभव्ये ऊर्जित पुण्ये ऊर्जित पुण्ये जिनमातः जिनमातः स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़कर माता को गुनगुने जल से स्नान कराना चाहिए एवं तीसरे दिन रात्रि के समय बालक को गोदी में उठाकर बाहर लाकर और निम्न मंत्र पढ़कर बालक को पिता अपनी हथेलियों में लिटाकर बालक का मुख ऊपर की ओर करते हुए अपनी पत्नी को दाईं ओर करके ताराओं से सुशोभित आकाश दिखाना चाहिए।)

अनन्तज्ञानदर्शी भव।

ॐ ह्रीं श्री जिनप्रसादात् मम सत्पुत्रो भवतु स्वाहा।

(तदुपरांत हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें। यथाशक्ति दान दें और निम्न मंत्र पढ़ते हुए माता और बालक को गंधोदक लगाकर आगंतुक महानुभावों को ससम्मान भोजन कराना चाहिए।)

❑ ❑ ❑

7. (अ) नामकर्म-क्रिया/संस्कार

नाम ऐसा करो कि नाम से ही काम हो जाए।
काम ऐसा करो कि काम से ही नाम हो जाए॥

नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः। (त.सू. १.५)

नाम स्थापना द्रव्य और भाव के द्वारा सम्यग्दर्शन और जीवादि सात प्रकार के तत्त्वों की व्यवस्थाएँ की जाती हैं अर्थात् लोक व्यवहार संचालित करने के लिए नाम के अनुसार गुण न होने

पर भी जो नाम रखा जाता है वह नाम कर्म-क्रिया/संस्कार कहलाता है। नामकरण नामनिक्षेप कहलाता है। इसके बिना लोकव्यवहार नहीं चल सकता अतः आपको धर्म-शास्त्रों के अनुसार नाम रखना चाहिए। संतान का सर्वोत्तम नामकरण करना चाहिए क्योंकि नामकरण उसका उच्चारण करने वाले की वाणी एवं मन को संस्कार और प्रभाव प्रदान करता है।

जंबूद्वीप लवणोदादयः शुभ-नामानो द्वीप-समुद्रात्न। (त. सू.३.७)

जंबूद्वीप और लवणसमुद्र आदि सभी शुभ नाम वाले द्वीप और समुद्र होते हैं। इस विषय पर विचार अवश्य करना चाहिए क्योंकि शास्त्रों के अनुसार जब द्वीप और समुद्र के नाम भी शुभ होते हैं तो हम अपनी संतान के नाम के विषय में शुभ-अशुभ का विचार क्यों नहीं करते अर्थात् शुभ-अशुभ का विचार करके अपनी संतान का नामकरण करना चाहिए। नाम उत्तम होने पर बालक भी प्रसन्नता एवं गौरव का अनुभव करता है तथा नाम उत्तम न होने पर वह दीन-हीन हो सकता है अतः विधि पूर्वक सर्वोत्तम नामकरण करना चाहिए। संतान का नाम जन सामान्य में यश-ख्याति का कारण बन सके इस भावना से हो सके तो अपनी संतान का नाम अपने दिगम्बर साधुओं के आशीर्वाद से उनके मार्गदर्शन में रखना चाहिए यदि यह संभव नहीं तो अपने बुजुर्गों के विचार विमर्श से नामकरण -क्रिया/संस्कार सम्पन्न करना चाहिए जिसकी विधि आगे शास्त्रों के अनुसार बताई जाएगी।

नामकर्म -क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. संतान का, कुटुंब का, समाज का एवं देश-धर्म का नाम सार्थक करने वाला नाम ही रखना चाहिए।

२. नाम विकृत नहीं करना चाहिए और तोड़-मरोड़ या बिगाड़ कर उच्चारण भी नहीं करना चाहिए अथवा किसी का संक्षिप्त नाम भी नहीं करना चाहिए जैसे- लालू रिंकू छोटू मोनू आदि।

३. नाम विदेशी या पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित नहीं होना चाहिए।

४. नाम रखते समय अपने धर्म समाज और जैनत्व प्रतिष्ठा का ध्यान रखना चाहिए।

५. नाम सहज, सरल, प्रभावी और मनमोहक आकर्षण का केंद्र होना चाहिए।

६. नाम व्यवस्थित रखना चाहिए न ही अधिक बड़ा और न अधिक छोटा होना चाहिए।

७. विद्यालय से लेकर व्यवहार में प्रयोग में आने वाला नाम सम्पूर्ण एवं एक ही हो इस बात का स्मरण अवश्य रखना चाहिए क्योंकि अनेक नाम भ्रमित करते हैं।

८. जन्म राशि से एवं ज्योतिषाचार्य के अनुरूप जो वर्ण/अक्षर आए उसी के अनुरूप ही नाम रखने का प्रयास करना चाहिए।

९ माता-पिता, भाई-बहन आदि के नाम के अनुसार नाम रखना चाहिए।

१०. अपने गुरु या कुशल गृहस्थाचार्य के विचार-विमर्श से नाम रखने का प्रयास करना चाहिए।

नामकर्म -क्रिया/संस्कार विधि-

द्वादशाहात् परं नामकर्म जन्मदिनान्मतम् ।
अनुकूले तस्यास्य पित्रोरपि सुखावहे ॥ ८७ ॥
यथाविभवमत्रेष्टं देवर्षिद्विज पूजनम्।
शस्तं च नामधेयं तत् स्थाप्यमन्वयवृद्धिकृत ॥ ८८ ॥

अष्टोत्तर सहस्त्राद् वा जिननाम कदम्बकान् ।
घटपत्र विधानेन ग्रामह्यन्यतमं शुभम् ॥ ८९ ॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

जन्मदिन से बारह दिन के पश्चात जो दिन माता-पिता और पुत्र को अनुकूल हो, सुख देने वाला हो, उस दिन नामकर्म/संस्कार की क्रिया की जाती है। इस क्रिया में अपने वैभव के अनुसार अरिहंतदेव और ऋषियों की पूजा करनी चाहिए, गृहस्थाचार्य का भी यथायोग्य स्वागत-सम्मान करना चाहिए, तथा जो वंश की वृद्धि करने वाला हो, ऐसा कोई उत्तम नाम बालक का खाना चाहिए अथवा जिनेन्द्रदेव के सहस्रनाम (एक हजार आठ नाम) में से कोई एक शुभ नाम घट पत्र विधि से ग्रहण कर लेना चाहिए।

जन्म दिन से बारह दिन के बाद अमावश्या, ग्रहण, संक्रान्ति, वैधृति, व्यतिपात आ जाए तो उस दिन नामकरण नहीं करना चाहिए। **जन्मदिन से बारहवें, सोलहवें, बीसवें या बत्तीसवें दिन नामकरण करना चाहिए।** कदाचित् बत्तीसवें दिन तक नामकर्म न हो सके तो जन्मदिन से वर्ष पर्यन्त जब चाहें नामकरण कर सकते हैं। इसमें मलमास, शुक्र आदि दोषों का विचार नहीं करना चाहिए। अपराह्न या रात्रि में नामकरण न करें। जिस नक्षत्र के जिस चरण में बालक का जन्म हो उसी अक्षर से नाम रखना चाहिए।

नामकर्म की घटपत्र विधि-

जिनेन्द्रदेव के एक हजार आठ नामों को एक हजार आठ कागज के टुकड़ों पर अष्टगन्ध से सुवर्ण अथवा अनार की कलम से लिखकर उनकी गोली बना ले और पीले वस्त्र तथा नारियल से ढके हुए एक घड़े में भर देवें। कागज के एक टुकड़े पर 'नाम' ऐसा

शब्द लिखकर उसकी गोली बना लेवें। इसी प्रकार एक हजार सात कोरे टुकड़ों की गोलियाँ बनाकर इन सबको एक दूसरे घड़े में भर देवें। किसी अबोध कन्या या बालक से दोनों घड़ों में से एक-एक गोली निकलवाते जाएं। जिस नाम की गोली के साथ नाम ऐसा लिखी हुई गोली निकले वही नाम बालक का रखना चाहिए। यह घटपत्र विधि कहलाती है।

मंगलाचरण, जलशुद्धि, अमृतस्नान, पात्रशुद्धि, नवतिलक, भूमिशुद्धि, रक्षासूत्रबन्धन, दिग्बन्धन, रक्षामंत्र, शान्तिमंत्राराधन, जिनाभिषेक, शान्तिधारा, मंगलकलश स्थापन, दीपकस्थापन दैनिक पूजन, विनायकयन्त्र पूजा के उपरान्त हवन कुण्डों के पूर्व में काष्ठासन पर पुत्र सहित दम्पती को भूषण से सुसज्जित कर बैठाकर पुत्र, स्त्री की गोद में रहे और वह स्त्री पति के दाईं और बैठे यह व्यवस्था बनानी चाहिए। मंगलकलश कुण्ड के पूर्व में दम्पती के सामने रखकर हवन के बाद जिनालय और अपने घर में बाजे बजवाने चाहिए। गृहस्थाचार्य को मंगलकलश को हाथ में लेकर पुण्याहवाचन पाठ करते हुए दम्पती और पुत्र के ऊपर जल सिंचन करना चाहिए अथवा अपने गुरु की कर कमलों से पुष्प क्षेपण करवाते हुए नामकरण करवाना चाहिए।

नामकर्म -क्रिया/संस्कार कैसे करें-

दम्पती और पुत्र के ऊपर जल के छींटे देते हुए पिता एक थाली में चावल फैलाकर उसमें प्रथम अपना नाम फिर जो पुत्र का नाम रखना हो यह लिखें। दूसरी थाली में घी और दूध मिलाकर उसमें उस बच्चे के पहनाने योग्य आभूषण डाल दें। दोनों ही थालियों में गन्धए पुष्प और डाँस डाल दें, मिले हुए भी और दूध

को डाभ से लेकर उस बच्चे के मस्तक कान कण्ठ, भुजा और छाती में सिंचन कर आभूषण पहनावें और श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करें कि एक हजार आठ नामों से सुशोभित श्री देवाधिदेव इस कुमार का नाम दीजिए। इस प्रकार तीन-चार प्रार्थना करते हुए निम्न मंत्र पढ़कर बालक का नाम उच्चस्वर में उच्चारण करते हुए भगवान को नमोस्तु कर पुष्प क्षेपण करते हुए रखना चाहिए।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अहं बालकस्य नामकरणं करोमि नाम्ना आयुरारोग्यैश्वर्यवान् भव भव झ्रौं झ्रौं अ सि आ उ सा स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़कर पुत्र पर पुष्प या पीले चावल बिखेरना चाहिए।)

दिव्याष्टसहस्त्रनाम-भागी भव ।
विजयाष्टसहस्त्रनाम-भागी भव ।
परमाष्टसहस्त्रनाम-भागी भव ।

(तदुपरांत हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें। यथाशक्ति दान दें और आगंतुक महानुभावों को ससम्मान भोजन कराना चाहिए।)

❑ ❑ ❑

7. (ब) कर्ण-नासिका वेध क्रिया-संस्कार

(नाक कान का छेदना)

कान के निचले भाग में एवं नासिका के बाँये नथुने में बारीक छिद्र करवाना वेध कहलाता है। कर्ण एवं नासिका वेध करने से अनेक रोग और बीमारियों से संतान सुरक्षित रहती है। आभूषण आदि पहिनने को भी कर्ण वेध आदि की आवश्यकता होती है। जिससे उसकी सुन्दरता बढ़ जाती है।

कर्ण-नासिका वेध की सावधानियाँ-

१. कर्ण नासिका वेध अल्पायु में ही करें।
२. वेध की सुई पतली और नुकीली हो।
३. योग्य और कुशल व्यक्ति से ही वेधक्रिया कराएँ।
४. वेध के समय बालक को पकड़ कर बैठें।
५. वेध की सुई सोना, चाँदी आदि उत्तम धातुओं की हो।
६. वेध क्रिया देवदर्शन पूर्वक ही करें।
७. वेध क्रिया करने वाला कुशल एवं योग्य हो।
८. वेध क्रिया के बाद वैध स्थानों पर थी, हल्दी केशर आदि लगा दें।
९. वेध स्थानों में पहिनने वाली वालियाँ कपड़ों में न उलझें।
१०. अनावश्यक वेध न कराएँ।

कर्ण-नासिका वेध की विधि-

जन्म से बारहवें दिन या तीसरे, पाँचवें वर्ष अर्थात् एक तीन पाँच आदि विषम वर्ष में कर्ण-नासिका वेध सर्वोत्तम है। जन्म से दो, चार, छह में समवर्ष में कर्ण-नासिका वेध नहीं कराना चाहिए।

सोमवार, बुधवार, गुरुवार एवं शुक्रवार आदि किसी भी दिन में कर्ण-नासिका वेध करा लेना चाहिए।

नामकरण के दिन सन्ध्या काल में भी कर्ण-नासिका वेध किया जा सकता है।

मंगलाचार करते हुए पुत्र हो तो निम्न मंत्र पढकर कर्ण छेदन करवाना चाहिए।

ॐ ह्रीं श्रीं अहं बालकस्य हः कर्णवेधनं करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।

पुत्री हो तो निम्न मंत्र पढ़कर कर्ण-नासिका छेदन करवाना चाहिए।

ॐ ह्रीं श्रीं अहं बालिकायैः ह्रः कर्णनासावेधनं करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।

❑ ❑ ❑

7. (स) दोलारोहण -क्रिया/संस्कार (पालना)

जन्म से बारहवें दिन के उपरांत संतान को पालने में झुलाने बाली क्रिया या संस्कार को दोलारोहण -क्रिया/संस्कार कहते है। इससे संतान गोद में विश्राम करने जैसा अनुभव करता है। उसे असुरक्षा का भाव नहीं रहता है और इस प्रकार माँ के बिना सोने का अभ्यास होता है तथा आत्मबल प्रकट होता है जिससे वह अच्छी नींद लेता है और स्वस्थ रहता है। दोलारोहण संतान के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का आधार बनता है। नामकर्म और कर्णवेध के उपरान्त थोड़ा विश्राम कर प्रथम पालना झुलाना चाहिए। यदि इस दिन न हो सके तो शुभ मुहूर्त में दोलारोहण कराना चाहिए।

दोलारोहण की सावधानियाँ-

१. पालना ज्यादा छोटा, ज्यादा बड़ा या ज्यादा ऊँचा नहीं होना चाहिए।

२. पालना लकड़ी का श्रेष्ठ होता है अतः प्रयास करें कि लकड़ी के पालने में ही संतान को झुलाना चाहिए।

३. पालने में संतान को बैठाकर नहीं झुलाना चाहिए और इतने ज्यादा जोर से भी नहीं झुलाना चाहिए जिससे संतान भयभीत हो जाए या उसका संतुलन बिगड़ जाए।

४. पालने के कपड़े नरम हों आजू-बाजू में तकिया अवश्य लगाना चाहिए जिससे संतान के गिरने का भय ना रहे।

५. पालने में बैठाकर भोजन कराते हुए नहीं अपितु धार्मिक एवं शिक्षाप्रद भजन या लोरियाँ सुनाते हुए ऐसे पालना झुलाना चाहिए जैसे आचार्य श्री कुंदकुंद महाराज की और आचार्य श्री विद्यासागर महाराज की माँ उन्हें सुनाया करतीं थीं।

६. संतान को पालने में या अन्य समय में मोबाइल से भजन/गाना सुनाने से बचना चाहिए।

७. पालने में संतान के हाथ-पैर न उलझें यह सावधानी रखनी चाहिए।

८. पालने में बालक का शिर पूर्व या दक्षिण की ओर रखना चाहिए।

९. संतान का सिर ना ज्यादा ऊँचा और ना ही ज्यादा नीचा रखना चाहिए।

१०. दो संतानों को एक पालने में एक साथ नहीं झुलाना चाहिए।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए संतान को पालने में लिटाकर पालना झुलाना चाहिए।)

ॐ ह्रीं झ्रौं झ्रौं क्ष्वीं क्ष्वीं आन्दोलं बालकं-आरोपयामि तस्य सर्वरक्षा भवतु झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

(पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें। यथाशक्ति दान दें और निम्न मंत्र पढ़ते हुए माता और बालक को गंधोदक लगाकर आगंतुक महानुभावों को ससम्मान भोजन कराना एवं मिष्ठान्न वितरण करना चाहिए।)

❑ ❑ ❑

8. बहिर्यान क्रिया/संस्कार (प्रथम जिनदर्शन/ जिनमंदिर दिवस)

४५ दिन या दो, तीन अथवा चार माह के उपरांत प्रथम बार नवजात शिशु के घर से बाहर निकलने की क्रिया को वहिर्यान क्रिया/संस्कार कहते हैं। नवजात शिशु के शरीर में खुले वातावरण की जलवायु को अचानक सहन करने की शक्ति नहीं होती है। उसे अनेक संक्रमण होने की संभावना रहती है अतः बालक को सावधानी पूर्वक बाहर लाना चाहिए। उसका जीवन स्वस्थ रहे और उत्तम बने इसलिए इस क्रिया को सर्व प्रथम जिनमन्दिर ले जाकर सम्पन्न करना चाहिए।

वह बालक जिनदर्शन कर अपनी जीवन यात्रा प्रारम्भ करता है। यह प्रथम जिनदर्शन एक प्रकार से बालक के जीवन का प्रथम मंगलाचरण मानना चाहिए।

बहिर्यान क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ -

१. बालक को स्नान कराके ही जिनमन्दिर ले जाना चाहिए।

२. बालक जिनमन्दिर में लघुशंका आदि न करे इस हेतु सावधान रहना चाहिए।

३. आठ वर्ष तक संतान जैन मंदिर जाती रहे इस हेतु माता-पिता को सावधान रहना चाहिए।

४. चन्दन का तिलक या गंधोदक लगाते समय वह बहकर आँख, कान आदि में नहीं जाने देना चाहिए।

५. बालक की प्रथम जिनदर्शन के उपलक्ष्य में मन्दिर में अष्टद्रव्य, वस्त्र, शास्त्र आदि दान अवश्य करना चाहिए।

६. अपने दिगंबर गुरु से या मन्दिर में यदि कोई साधु विराजमान हों तो उनसे ही णमोकार मंत्र सुनवाना चाहिए।

७. जिनदर्शन कराते समय बालक को पृथ्वी पर नहीं लिटाना चाहिए।

८. मन्दिर में बालक को दूध या पानी पिलाने से माताओं को बचना चाहिए।

९. अशुद्धि के भय से या प्रतिकूल वातावरण के भय से बालक को मन्दिर में ज्यादा नहीं रोकना चाहिए।

१०. प्रति वर्ष प्रथम जिनदर्शन की तिथि को उत्सव की तरह मनाना चाहिए ।

बहिर्यान संस्कार विधि-

बहिर्यान ततो द्वित्रैर्मासैस्त्रिचतुरैरुत ।
यथानुकूलमिष्टेह्नि कार्यं तूर्यादिमंगलैः ॥ ९० ॥
ततः प्रभृत्यमीष्टं हि शिशोः प्रसव वेश्मनः ।
बहिरू प्रणयनं मात्रा धायुत्संगतस्य वा ॥ ९१ ॥
तत्र बन्धुजनादर्थलाभो यः पारितोषकः ।
स तस्योत्तरकालेर्प्यो धनं पियं यदाप्स्यति ॥ ९२ ॥

(आदिपुराण, पर्व-३८)

दो, तीन अथवा चार माह के बाद किसी शुभ दिन तुरही आदि मांगलिक बाजों के साथ-साथ अपनी अनुकूलता के अनुसार बहिर्यान क्रिया करनी चाहिए। जिस दिन यह क्रिया की

जावे, उसी दिन से माता अथवा धाय की गोद से बाहर ले जाना शास्त्र सम्मत है। इस क्रिया के करते समय बालक को भाई बान्धव आदि से पारितोषिक, भेंटरूप से जो धन की प्राप्ति हो, उसे इकट्ठा कर जब वह पुत्र पिता के धन का अधिकारी हो तब उसके लिए सौंप देवें ।

बहिर्यान का अर्थ बाहर निकालना है। बाहर निकालने का अभिप्राय बालक को श्री जिनेन्द्रदेव का प्रथम दर्शन कराना है।

बालक को स्नान कराके वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर निम्न मंत्र पढ़ते हुए उस पर और माता-पिता पर भी पवित्र जल का सिंचन करना चाहिए।

श्रीमद् जिनेन्द्र चरणारविंदेष्वानंद भक्तिः सदास्तु।

माता-पिता, कोई परिजन, नातेदार या धाय कोई भी बालक को गोद में लेकर बाजे-गाजे से भाई-बंधु, सौभाग्यवती स्त्रियों एवं समाज के साथ जिनालय में जाकर जिनेन्द्रदेव की तीन प्रदक्षिणा देकर अभिषेक पूजा और हवन आदि करते हुए बालक की वृद्धि की कामना करना चाहिए।

(निम्न मन्त्र पढ़कर बालक को श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन कराके शिशु को गंधोदक लगाना चाहिए एवं रक्षामन्त्र और शान्तिमंत्र पढ़ते हुए पूजा के शेष पुष्पाक्षत भी उसके शीश पर डालना चाहिए।)

ॐ नमोऽर्हते भगवते जिनभास्कराय तब मुखबालकं दर्शयामि दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा।

(निम्न मन्त्र पढ़कर बालक के सिर पर पुष्प क्षेपण करते हुए मुनिराज आदि साधुजनों गुरुजनों या गृहस्थाचार्य से णमोकार मन्त्र

सुनाकर एवं आशीर्वाद दिलाकर महोत्सव सहित घर वापस आकर संघ को यथायोग्य दान तथा आगत जनों का सत्कार करना चाहिए।)

उपनयननिष्क्रान्तिभागी भव ।
वैवाह निष्क्रान्तिभागी भव ।
मुनीन्द्र निष्क्रान्तिभागी भव ।
सुरेन्द्र निष्क्रान्तिभागी भव ।
मन्दराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव ।
यौवराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव ।
महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव ।
परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव ।
आर्हन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव ।

(पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें। यथाशक्ति दान दें और निम्न मंत्र पढ़ते हुए माता और बालक को गंधोदक लगाकर आगंतुक महानुभावों को ससम्मान भोजन कराना एवं मिष्ठान्न वितरण करना चाहिए।)

❑ ❑ ❑

9. निषद्या -क्रिया/संस्कार (बैठना)

जन्म से पंचम माह में बालक को प्रथम बार बैठाने की क्रिया को निषद्याक्रिया/संस्कार कहते हैं। इस संस्कार में बालक को प्रथम बार बैठाने की क्रिया की जाती है जो बालक के जीवन को क्रियाशील, गतिशील, सक्रिय एवं विकसित कर पद्मासन आदि आसनों में बैठने की योग्य प्रदान करती है। जिससे वह जाप, ध्यान योग आदि के माध्यम से कर्मक्षय एवं मोक्षमार्ग प्रशस्त करे, ऐसी भावना करनी चाहिए।

निषद्या -क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. बालक को नर्म आसन पर ही बैठाना चाहिए।

२. बालक को बैठाते समय सहारा अवश्य देना चाहिए।

३. बालक को ज्यादा देर तक नहीं बैठाना चाहिए।

४. यदि बालक पद्मासन में न बैठ सके तो सुखासन में बैठाना चाहिए।

५. जिनदर्शन पूर्वक ही निषद्या-क्रिया/संस्कार करना चाहिए।

६. बालक को श्रीजी की ओर या पूर्व या उत्तर दिशा में मुँह करके बैठाना चाहिए।

७. बालक को शुद्ध-सात्विक परिधान पहना कर बैठाना चाहिए।

८. बालक को शुद्ध करके वस्त्राभूषण सहित बैठाना चाहिए।

९. बालक को दूध पिलाते हुए या जूठे मुँह करके नहीं बैठाना चाहिए।

१०. बालक को चौक पूरकर चौकी के ऊपर बैठना चाहिए।

निषद्या -क्रिया/संस्कार विधि-

ततः परं निषद्यास्य क्रिया बालस्य कल्प्यते ।
तद्योग्यं तल्प आस्तीर्णे कृत मंगल सन्निधौ ॥९३ ॥
सिद्धार्चनादिकः सर्वो विधिः पूर्ववदत्र च ।
यतो दिव्यासनार्ह त्वमस्य स्यादुत्तरोत्तरम् ॥९४ ॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

अर्थात् जिसके समीप मंगल द्रव्य रखे हुए हैं और जो बालक के योग्य हैए ऐसे मांगलिक बिछाए हुए आसन पर उस

बालक की निषद्या क्रिया की जाती है अर्थात् उसे उत्तम आसन पर बैठा लेते हैं। इस क्रिया में सिद्ध भगवान की पूजा करना आदि सब विधि पहले के समान ही करनी चाहिए जिससे इस बालक की उत्तरोत्तर दिव्य आसन पर बैठने की योग्यता होती है।

ॐ ह्रीं क्ष्वीं भू स्वाहा।

जल से भूमि शुद्धि करें। पञ्च धान्य चावल, गेहूँ, बिछाये हुए आसन पर उस बालक की निषद्या क्रिया की जाती है, अर्थात् उसे उत्तम आसन पर बैठा लेते हैं। इस क्रिया में सिद्ध भगवान की पूजा करना आदि सब विधि पहले के समान ही करनी चाहिए जिससे इस बालक की उत्तरोत्तर दिव्य आसन पर बैठने की योग्यता होती है।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए जल से भूमि शुद्धि कर। पञ्च धान्य चावल, गेहूँ, उड़द, मूंग, तिल, जौ आदि से चौक बनाकर उस पर एक वस्त्र बिछाकर आसन सज्ज करना चाहिए।)

ॐ ह्रीं क्ष्वीं भू स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़कर रंगावली पर बिछे हुए वस्त्र वाले आसन पर बालक को श्रीजी की ओर या पूर्व या उत्तरदिशा की ओर मुख करके पद्मासन या सुखासन में बैठाना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा श्रीं अर्ह बालक उपवेशयामि स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक पर जल के छींटे देना चाहिए एवं केशर से तिलक करते हुए दीपक से आरती उतारना चाहिए।)

श्रीमज्जिनेन्द्र-चरणारविन्देष्वानन्द-भक्तिः सदाऽस्तु ।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिव्यसन वर्जितम्।
अभयं क्षेमारोग्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते ॥

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए मुनिराज आर्यिका विद्वान् या वृद्धजनों से बालक को आशीर्वाद दिलाते हुए उसके शीश पर अक्षत क्षेपण करते हुए णमोकर मंत्र सुनाते हुए संघ को यथायोग्य दान तथा आगत जनों का स्वागत-सत्कार करना चाहिए।)

दिव्यसिंहासनभागी भव ।
विजयसिंहासनभागी भव ।
परमसिंहासनभागी भव ।

(पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें। यथाशक्ति दान दें और निम्न मंत्र पढ़ते हुए माता और बालक को गंधोदक लगाकर आगंतुक महानुभावों को ससम्मान भोजन कराना एवं मिष्ठान्न वितरण करना चाहिए।)

❑ ❑ ❑

10. (अ) अन्नप्राशन-क्रिया/संस्कार (पासनी/उपासनी)

जन्म से छह माहों के पश्चात लगभग सप्तम अष्टम माह में बालक का प्रथम बार अन्न ग्रहण करने की क्रिया को अन्नप्राशन क्रिया कहते हैं। जन्म से माँ का दूध ही बालक का आहार होता है किन्तु छह माह के पश्चात उसका शारीरिक विकास होने से पाचनतंत्र भी विकसित होता जाता है अतः उसे ठोस एवं संपूर्ण आहार की आवश्यकता होती है। वह आहार ठोस, सुपाच्य, मर्यादित, शाकाहारी आदि गुणों से सहित हो। इस प्रथम आहार ग्रहण की प्रक्रिया को अन्नप्राशन-क्रिया/संस्कार के रूप में किया जाता है जिससे उसका आहार जीवन भर व्यवस्थित एवं सन्तुलित रहे।

अन्नप्राशन -क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. आहार सुपाच्य, हल्का एवं सात्विक होना चाहिए।

२. प्रथम बार में ज्यादा आहार नहीं कराना चाहिए।

३. लिटाकर आहार नहीं कराना चाहिए।

४. आहार ज्यादा गरिष्ठ, चरपरा, तीखा एवं तेज गर्म नहीं होना चाहिए।

५. अन्नप्राशन संस्कार के लिए वर्तन श्रेष्ठ धातु के हों।

६. सोते हुए या लिटा कर भोजन नहीं कराना चाहिए।

७. भोजन शुद्धिपूर्वक बना हुआ एवं मर्यादित होना चाहिए।

८. जिनदर्शन पूर्वक हो अन्नप्राशन संस्कार करें।

९. कोई अभक्ष्य आहार नहीं देना चाहिए।

१०. प्रथम आहार में तरल मधुर एवं सुस्वादु खीर आदि देना चाहिए।

अन्नप्राशन -क्रिया/संस्कार विधि-

गते मास पृथक्त्वे च जन्माद्यस्य यथाक्रमम् ।
अन्नप्राशनमानातं पूजा विधि पुरः सरम् ॥९५॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

जब बालक क्रम-क्रम से सात-आठ माह का हो जाए तब अरिहंत भगवान की पूजा आदि कर बालक को अन्न खिलाना चाहिए। अन्नप्राशन का अर्थ है बालक को अन्न खिलाना अर्थात् बालक को अन्न का भोजन करना सिखलाने के लिए तथा उस अन्न द्वारा बालक की वृद्धि होने के लिए यह संस्कार बालक के सातवें, आठवें या नवें माह में करना उचित है।

अन्नप्राशन मुहूर्त-

जन्म से छह माह के पश्चात बालक को सम माह अर्थात् छठवें, आठवें या दसवें माह में और कन्या को विषम अर्थात् सातवें या नौवें माह में अन्नप्राशन कराना शुभ है। अन्नप्राशन शुक्लपक्ष में दोपहर पूर्व कराना चाहिए।

(सर्व प्रथम जिनमंदिर जी में जाकर विधिपूर्वक दर्शन अभिषेक पूजन विधान हवन आदि करके निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक को गंधोदक लगाकर चौक पर चौकी के ऊपर पिता की गोद में पूर्व या उत्तर मुखी बैठाना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमोऽर्हते भगवते भुक्ति शक्ति प्रदाय बालकं भोजयामि पुष्टिः तुष्टिश्चारोग्यं भवतु भवतु झ्वीं क्ष्वीं स्वाहा ।

(निम्न मंत्रों को पढ़ते हुए गृहस्थाचार्य या किसी परिजन को स्वयं बालक के शीश पर पुष्प (पीले चावल) क्षेपण करते हुए दूध भात, खीर या मिष्ठान्न कटोरे में से थोड़ा सा चम्मच में लेकर बालक के मुख में खिलाना चाहिए।)

दिव्यामृतभागी भव।

विजयामृतभागी भव ।

अक्षीणामृतभागी भव ।

(पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें। यथाशक्ति दान दें और आगंतुक महानुभावों को ससम्मान भोजन कराना एवं मिष्ठान्न वितरण करना चाहिए तथा सौभाग्यवती महिलाओं को मंगलाचार भी करना चाहिए।)

10. (ब) पादन्यास -क्रिया/संस्कार (गमन विधि)

नवम माह में प्रथम बार बालक के द्वारा गमन करने या चलने की क्रिया को पादन्यास-क्रिया/संस्कार विधि कहते हैं। प्रथम बार चलने की क्रिया से बालक जीवन को चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए योग्यता प्राप्त होती है। इसके माध्यम से बालक संयमपथ पर चलकर मोक्षमार्ग पर चलने की क्रिया प्रारम्भ करता है। निरंतर गतिमान रहना या चलना विकास का द्योतक है। कुमार्ग पर चलना पतन एवं सुमार्ग पर चलना उत्थान का कारण है अतः सन्मार्ग पर चलने के लिए पादन्यास-क्रिया/संस्कार आवश्यक होता है।

पादन्यास (गमन) विधि की सावधानियाँ-

१. प्रथम बार बालक को बहुत देर तक नहीं चलाना चाहिए।

२. हवन कुण्ड के चारों ओर चलाते समय अग्नि और लौ से बालक की सुरक्षा करनी चाहिए।

३. बालक को स्वतंत्र रूप से ना चलाएँ ना चलने दें और चलाते समय सहारा अवश्य देना चाहिए।

४. बालक को चलाते समय स्वयं संतुलन बनाने देना चाहिए।

५. बालक को धैर्य पूर्वक धीरे-धीरे चलाना चाहिए।

६. जिनदर्शन पूर्वक ही पादन्यास (गमन) विधि की क्रिया सम्पन्न कराना चाहिए।

७. बालक को प्रथम बार जूता, मोजा, चप्पल पहिनाकर नहीं चलाना चाहिए।

८. बालक को प्रथम बार चलाते समय भूमि कंकड़, कीचड़ और कंटक रहित एवं सम, स्वच्छ और मृदु होनी चाहिए।

९. बालक को प्रथम बार पिता या दादा जी के द्वारा ही चलाना चाहिए।

१०. बालक को प्रथम अपने गुरु माता पिता आदि लोगों से आशीर्वाद दिला कर ही चलाना चाहिए।

पादन्यास -क्रिया/संस्कार (गमन विधि)-

अथास्य नवें मासे गमनं कारयेत्पिता ।
गमनोचित नक्षत्रे सुवारे शुभयोगके ॥
पूजा होम जिनावासे पिता कुर्याच्च पूर्ववत् ।
पुत्रं संस्नाप्य सद्स्यैर्भूपयेभूषणैः परम् ॥

(आदिपुराण पर्व ३८)

नवें माह में गमन के योग्य शुभ नक्षत्र, शुभ दिन और शुभ योग में पिता बालक की गमन विधि करें।

मन्दिर जी में जाकर जिनदर्शन-पूजन, हवन आदि करके स्नान किए हुए पुत्र को वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर प्रथम बार पादन्यास विधि करानी चाहिए।

(बालक को गन्धोदक लगाकर निम्न मंत्र पढ़ते हुए हवन-अग्निकुण्ड की तीन प्रदक्षिणा रूप बालक को प्रथम बार चलाना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अर्हं नमः एनं बालं पादन्यासं शिक्षयामि तस्य सौख्यं भवतु भवतु झ्वीं क्ष्वीं स्वाहा।

पश्चात् बालक से जिनेन्द्र भगवान को नमोस्तु कराके गुरु और वृद्धजनों से आशीर्वाद ग्रहण कराना चाहिए।

(पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन करें।)

❑ ❑ ❑

11. व्युष्टिध्वर्षवर्धन –क्रिया/संस्कार (जन्मदिवस)

बालक के जन्म से एक वर्ष पूर्ण होने पर जन्मदिवस पर जो महोत्सव किया जाता है उसे व्युष्टिध्वर्षवर्धन –क्रिया/संस्कार कहा जाता है। व्युष्टि (वर्षवर्धन) क्रिया वर्षगाँठ को कहते हैं। यह एक वर्ष बालक को सभी ऋतुओं के प्रभाव से अनुकूलता बनाकर जीवन यात्रा को कुशलता पूर्वक पूर्ण करने के संकेत देता है अतः हम हर्ष मनाते हैं। जन्मदिवस मनाना हमें संकेत देता है कि हमारी आयु से एक वर्ष कम हो गया है। आपको संसार के माया जाल में न उलझ कर आत्मकल्याण का मार्ग अपनाना चाहिए। व्युष्टि (वर्षवर्धन) क्रिया जहाँ वृद्धि, विकास, उत्थान का द्योतक है और उत्साह, उमंग एवं कर्तव्यबोध कारक है, वहीं आयु ह्रास सिद्धान्त का सूचक भी है, जो जीवन यात्रा का दिग्दर्शन करता है।

व्युष्टि/वर्षवर्धन-क्रिया/संस्कार(जन्मदिवस)की सावधानियाँ-

१. जन्मदिवस विदेशी या पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार नहीं मनाना चाहिए।

२. मोमबत्ती बुझा कर नहीं अपितु दीपक जलाकर जन्मदिवस मनाना चाहिए जो शुभ का प्रतीक माना जाता है ।

३. महावीर भगवान के परनाना का नाम केक था अतः केक काटना संकल्पी हिंसा का प्रतीक माना जाएगा इसलिए केक काटकर नहीं अपितु मिष्ठान्न वितरण करके जन्मदिन मनाना चाहिए।

४. मिष्ठान शुद्ध और शाकाहारी होना चाहिए।

५. जन्मदिवस के आयोजन में भोजन या स्वल्पाहार अभक्ष्य नहीं होना चाहिए।

६. जन्मदिवस के आयोजन में दी जाने वाली सामग्री हिंसक, अभक्ष्य एवं अनुपयोगी नहीं होना चाहिए।

७. जन्मदिवस के आयोजन में देवदर्शन, पूजा-विधान एवं दान आदि धार्मिक क्रियाओं को महत्व देना चाहिए।

८. जन्मदिवस के आयोजन में निराश्रितों और अनाथों को भोजन फल वस्त्र आदि वितरित कर उनकी सहायता की जा सकती है।

९. ऐसे अवसर पर अभावग्रस्त प्रतिभावान छात्रों की सहायता अवश्य करना चाहिए।

१०. जन्मदिवस के आयोजन में अनावश्यक हिंसाओं से बचना चाहिए।

व्युष्टि/वर्षवर्धन-क्रिया/संस्कार (जन्मदिवस) विधि-

ततोऽस्य हायने पूर्णे व्युष्टिर्नाम क्रियामता ।
वर्षवर्धन पर्यायशब्दवाच्या यथाश्रुतम् ॥ ९६ ॥
अत्रापि पूर्ववद्दानं जैनी पूजा च पूर्ववत् ।
इष्टबन्धसमाह्वानं समाशादिश्च लक्ष्यताम् ॥ ९७ ॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

एक वर्ष पूर्ण होने पर व्युष्टि नाम की क्रिया की जाती है। इस क्रिया का दूसरा नाम शास्त्रानुसार वर्षवर्धन भी है। इस क्रिया में भी पहले के समान ही दान देना, जिनेन्द्र भगवान की पूजा, इष्ट बन्धुओं को भोजन आदि कराना चाहिए।

बालक को स्नान कराकर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर

मन्दिर जी ले जाकर जिनदर्शन कराके विधि विधान से क्रियाएँ कर बालक को गंधोदक लगाते हुए निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक पर पुष्प क्षेपण करना चाहिए ।

उपनयन जन्म वर्षवर्धन-भागी भव ।
वैवाहनिष्ठ जन्म वर्षवर्धन-भागी भव ।
मुनीन्द्र जन्म वर्षवर्धन-भागी भव ।
सुरेन्द्र जन्म वर्षवर्धन-भागी भव ।
मन्दराभिषेक वर्षवर्धन-भागी भव ।
यौवराज्य वर्षवर्धन-भागी भव।
महाराज्य वर्षवर्धन-भागी भव ।
परमराज्य वर्षवर्धन-भागी भव ।
आर्हन्त्यराज्य जन्म वर्षवर्धन-भागी भव ।

पश्चात् बालक से जिनेन्द्र भगवान को नमोस्तु कराके गुरु और वृद्धजनों से आशीर्वाद ग्रहण कराना चाहिए। पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन कर क्रिया संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

12. केशवाप -क्रिया/संस्कार(क्षौरकर्म/चौलकर्म/मुण्डन)

जन्म के पश्चात प्रथम वर्ष के पाँचवें, सातवें, नौवें या ग्यारहवें माह या तीसरे वर्ष के प्रथम तृतीय और पंचम आदि विषम माह में अथवा पाँचवें या सातवें वर्ष में जो बालक का मुण्डन संस्कार कराया जाता है उसे केशवाप-क्रिया/संस्कार (क्षौरकर्म/ चौलकर्म/मुण्डन) कहते हैं। गर्भ के विविध रसायनों से बालक का

समस्त शरीर प्रभावित रहता है। बार-बार मालिश आदि करने से शरीर की चमड़ी निकल जाती है और नयी चिकनी चमकदार चमड़ी आ जाती हैं किन्तु बालों का परिवर्तन मुण्डन संस्कार के अभाव में नहीं हो सकता है इसलिए मुण्डन कराया जाता है जिससे सिर के रोम छिद्र खुल जाने से नये घने एवं स्वस्थ बाल आ जाते हैं। इस संस्कार का मुख्य उद्धेश्य जैन मुनियों की/श्रमणों की निर्ग्रन्थ परम्परा को स्त्री पर्याय की अपेक्षा से आर्यिकाओं की परम्परा की शिक्षा देना भी होता है। चूँकि इसके माध्यम से मुनियों के केशलोंच के संस्कार दिये जाते हैं इसलिए यह संस्कार प्रायः किसी सिद्धक्षेत्र अतिशयक्षेत्र या तीर्थक्षेत्र पर ही कराना चाहिए।

केशवाप-क्रिया/संस्कार (क्षौरकर्म/चौलकर्म/मुण्डन) की सावधानियाँ-

१. योग्य एवं कुशल नाई से मुण्डन अवश्य कराना चाहिए।

२. मुण्डन के उपकरण शुद्ध एवं बैक्टीरिया रहित होने चाहिए।

३. मुण्डन के समय बालक को भली-भांति से पकड़ कर रखना चाहिए जिससे वह हिल न सके और भली-भांति मुण्डन संस्कार हो जाए।

४. मुण्डन किसी सिद्धक्षेत्र अतिशयक्षेत्र या तीर्थक्षेत्र पर ही कराना चाहिए यदि यह संभव ना हो तो अपने नगर के मंदिर के बाहर भी कराया जा सकता है।

५. मुण्डन के पश्चात बालक के सिर पर घी हल्दी केशर अवश्य लगाना चाहिए।

६. मुण्डन के केश नदी, सरोवर आदि के जल में विसर्जित नहीं करने चाहिए अपितु धरती के किसी गड्ढे में समर्पित कर देना चाहिए।

७. मुण्डन संस्कार जिनदर्शन, अभिषेक, पूजन, विधान, हवन और दान पूर्वक ही करना चाहिए।

८. मुण्डन के उपरांत बालक को औषधीय अमृत जल से स्नान कराना चाहिए।

९. बालक के मुण्डन के अवसर पर अपने गुरु से आशीर्वाद लेकर वादित्र अवश्य बजवाने चाहिए।

१०. मुण्डन संस्कार की उपेक्षा नहीं करना चाहिए क्योंकि यह मुण्डन जितना धार्मिक दृष्टिकोण से आवश्यक है उतना ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी आवश्यक होता है।

केशवाप-क्रिया/संस्कार (क्षौरकर्म/चौलकर्म/मुण्डन) की विधि-

केशवापस्तु केशानां शुभेऽह्निव्यपरोपणम्।
क्षौरेण कर्मणां देवगुरु पूजापुरस्सरम् ॥ ९८ ॥
गन्धोदकार्दितान् कृत्वा केशान् शेषाक्षतोचितान्।
मौण्ड्यमस्य विधेयं स्यात् सचूलं स्वाऽन्ययोचितम्॥९९॥
स्वपनोदक धौतांगमनुलिप्तं सभूषणम्।
प्रणमय्य मुनीन् पश्चाद् योजयेद्बन्धुना शिषा॥१००॥
चौलाख्यया प्रजीतेयं कृतपुण्याह मंगला ।
क्रियास्यामादृतो लोको यतते परया मुदा ॥ १०१॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

शुभ मुहूर्त में देव और गुरु की पूजा के साथ साथ क्षौरकर्म अर्थात् क्षुरा/उस्तरा से बालक के बाल बनवाना केशवाप क्रिया कहलाती है।

प्रथम ही बालक के बालों को गंधोदक से गीलाकर उन पर पूजा से बचे हुए अक्षत रखें और फिर चोटी सहित अथवा अपनी कुल पद्धति के अनुसार उसका मुण्डन करना चाहिए।

स्नान कराने के लिए लाए गए जल से स्नान कर लेप लगा करके वस्त्राभूषण के सहित बालक से मुनियों को नमस्कार करावें, सभी भाई-बन्धु उसे आशीर्वाद दें। इस क्रिया में पुण्याह मंगल किया जाता है। यह चौलक्रिया नाम से प्रसिद्ध है। इस क्रिया में आदर को प्राप्त हुए लोग हर्ष से प्रवृत्त होते हैं।

केशवाप-क्रिया/संस्कार (क्षौरकर्म/चौलकर्म/मुण्डन) के मुहूर्त-

जन्म के प्रथम वर्ष के ५, ७, ९, ११ वें महीने या तीसरे वर्ष के १, ३, ५, ७, ९, ११ माह में अथवा ५, ७ वें वर्ष में बालक का मुण्डन कराना उचित माना जाता है। यदि बालक की माता के पाँच माह से अधिक का गर्भ हो तो बालक का मुण्डन शुभ नहीं है। यदि बालक ५ वर्ष से अधिक दिनों का हो तो माता के गर्भवती रहने पर भी मुण्डन शुभ है।

ज्येष्ठ बालक या बालिका का ज्येष्ठ माह में मुण्डन नहीं कराना चाहिए अन्य मत से अगहन में भी नहीं करना चाहिए।

ज्येष्ठा, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी, और पुष्य आदि नक्षत्रों की २,

३, ५, ७, १०, ११, १३ आदि तिथियों में सोमवार, बुधवार, शुक्रवार और गुरुवार को मुण्डन कराना चाहिए।

सूर्य संक्रान्ति एवं चैत्र माह को छोड़कर उत्तरायण शुभ है।

अपने कुल की परम्परा के अनुसार जिस स्थान पर परिवार जन मुण्डन कराते हों या जो तीर्थ अधिक मान्य हो वहाँ जाकर मुण्डन कराना चाहिए।

सर्व प्रथम मंदिर जी में जाकर दर्शन करके मंगलाचरण आदि दैनिक अभिषेक पूजन सम्पन्न करके जिनमन्दिर से गंधोदक, शेषाक्षत इत्यादि लाकर के मुण्डन स्थल पर जलपूर्ण मंगल कलश स्थापित कर मुण्डन करा लेना चाहिए तत्पश्चात् मुण्डन के उपकरणों पर पुष्प, गन्ध, अक्षत छोड़कर पवित्र करना चाहिए।

माता बालक को गोद में बैठा ले। पिता प्रासुक जल से बालक के शिर को प्रदक्षिणा क्रम से भिगोवें और गन्धोदक लगाकर शेषाक्षत सिर पर रखते हुए सर्वप्रथम पिता को बालक के बाल काटना प्रारंभ करना चाहिए ।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए मुण्डन प्रारंभ करना चाहिए)

ॐ नमोऽर्हते भगवते जिनेश्वराय (अरिहंतपरमेष्ठिने) मम पुत्र (संतान) उपनयन मुण्ड मुण्डित महाभागी भवतु भवतु स्वाहा।

ॐ ह्रीं नमः सिद्धपरमेष्ठिने मम पुत्रो निर्ग्रन्थ मुण्डभागी भवतु स्वाहा।

ॐ ह्रीं नमः आचार्य परमेष्ठिने मम पुत्रो निष्क्रान्ति मुण्डभागी भवतु स्वाहा।

ॐ ह्रौं नमः उपाध्यायपरमेष्ठिने मम पुत्र एन्द्रभागी भवतु स्वाहा।

ॐ ह्रः नमः सर्वसाधुपरमेष्ठिने मम पुत्रः परमराज्यकेश भागी भवतु स्वाहा।

ॐ ह्रीं पञ्चपरमेष्ठि प्रसादात् केशान्वय-शिरोरक्ष-कुशली कुरु नापित ।

(पश्चात् निम्न मंत्र पढ़कर नाई को क्षुरा आदि दे देना चाहिए।)

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा ॐ अर्हं मंगललोगुत्तम शरणभूत प्रसादात् अयं बालः पञ्चपरमेष्ठि केशवापक्रिया भागी भवतु स्वाहा।

(निम्न मंत्र बोलते हुए केशों का मुण्डन कराके बालक को प्रासुक जल से स्नान कराकर शिर पर घृत आदि लगाना चाहिए पश्चात चोटी के स्थान पर केशर से स्वस्तिक लिखकर गृहस्थाचार्य को पुण्याह वाचन करते हुए शिशु के शीश पर गंधोदक का सिंचन कर निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक की शीश पर पुष्प क्षेपण भी करना चाहिए)

उपनयन-मुण्ड भागी भव ।
निर्ग्रन्थ-मुण्डभागी भव ।
निष्क्रान्ति-मुण्डभागी भव ।
परमनिस्तारक-केशभागी भव ।
परमेन्द्र-केशभागी भव ।
परमराज्य-केशभागी भव ।
आर्हन्त्यराज्य-केशभागी भव ।

पश्चात् बालक से जिनेन्द्र भगवान को नमोस्तु कराके गुरु

और वृद्धजनों से आशीर्वाद ग्रहण कराना चाहिए। पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन कर क्रिया संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए और आगंतुक महानुभावों का भोजनादि कराते हुए सम्मान करते हुए दान के साथ वादित्र भी बजवाने चाहिए।

❑ ❑ ❑

13. लिपिसंख्यान-क्रिया/संस्कार

जन्म के ५ वर्ष उपरांत शिक्षा ग्रहण के पूर्व जो संस्कार किया जाता है उसे लिपिसंख्यान-क्रिया/संस्कार कहते हैं। शिक्षा ग्रहण के योग्य बालक को स्वस्थ मानसिक विकास पाँच वर्ष की आयु तक ही हो पाता है, अतः पाँचवें वर्ष में लिपिसंख्यान संस्कार करना चाहिए। इसका उद्देश्य शिक्षा के साथ-साथ संस्कार प्राप्तकर जैनागम के अध्ययन से आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना होता है। यह संस्कार जिनवाणी रूप सत्साहित्य की अभिवृद्धि का कारण है। इसलिए इस संस्कार से बालक दूषित साहित्य से बचकर सत साहित्य की ओर प्रवृत्ति करता है।

शिक्षा जहाँ विचारों की अभिव्यक्ति, संस्कारित जीवन शैली, सत्साहित्य के अध्ययन से वस्तु स्वरूप के ज्ञान का कारण होती है, वहीं नव चिंतनपूर्वक पूर्वाचार्यों के विचारों को सरल, सहज और स्थानीय भाषा में जन-जन तक पहुँचाने के लिए साहित्य सृजन में भी सहायक होती है किंतु शिक्षा संस्कारों के अभाव में पतन का निमित्त बनती है अतः शिक्षा के साथ संस्कारित करना इस संस्कार का परम उद्देश्य है।

लिपिसंख्यान -क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. जिनदर्शन अभिषेक पूजन के उपरांत ही लिपिसंख्यान - क्रिया/संस्कार करना चाहिए।

२. बालक की शिक्षा-अध्ययन के लिए कुशल शिक्षक का चयन करना चाहिए।

३. बालक को अपने शिक्षा गुरु की विनय करना सिखाना चाहिए।

४. बालक को अनुशासित वेशभूषा में ही विद्यालय ले जाना चाहिए।

५. बालक को पठन-पाठन हेतु कलम पेंसिल आदि अहिंसक सामग्री दिलाना चाहिए।

६. बालक को मात्र अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलाने से उसके संस्कार धार्मिक एवं आध्यात्मिक रूप से अवरुद्ध हो सकते हैं इसलिए अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी, संस्कृत और प्राकृत आदि अन्य भाषाओं का अध्ययन भी जरूर कराना चाहिए।

७. बालक को लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षाएं भी अवश्य दिलाना चाहिए।

८. पाँच वर्ष से पहले शिक्षा दिलाने से बालक का मानसिक विकास प्रभावित हो सकता है एवं बाल्यकाल की स्वर्णिम सुखद अनुभूतियों से भी संतान अपरिचित रह सकती है।

९. लिपिसंख्यान संस्कार कुशल गृहस्थाचार्य से ही सम्पन्न कराना चाहिए।

१०. बालकों को अध्ययन काल में मोबाइल के दुरुपयोग से बचना चाहिए।

लिपिसंख्यान संस्कार विधि-

ततोऽस्य पंचमे वर्षे प्रथमाक्षरदर्शने ।
ज्ञेयः क्रियाविधिर्नाम्ना लिपिसंख्यानसंग्रहः ।।१०२॥
यथाविभव मत्रापि ज्ञेयः पूजा परिच्छदः ।
उपाध्यायपदे चास्य मतोऽधीतो गृहव्रती ॥१०३॥

पाँचवें वर्ष में बालक को सर्वप्रथम अक्षरों का दर्शन कराने के लिए लिपिसंख्यान नाम की क्रिया की जाती है। इसमें अपने वैभव के अनुसार पूजा आदि की सामग्री एकत्र कर पूजन आदि करके अध्यापन कराने में कुशल व्रती गृहस्थ को ही उस बालक के अध्यापक के पद पर नियुक्त करना चाहिए।

सर्व प्रथम जिनमंदिर जी में जाकर जिनदर्शन, अभिषेक, पूजन, विधान, और हवन आदि करके बालक को गुरु के समीप पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठाना चाहिए। गृहस्थाचार्य उत्तर दिशा की ओर मुखकर बैठें और **ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ नमः सिद्धेभ्यः** बोलकर बालक की स्लेट पर **ॐ नमः सिद्धेभ्यः** लिखने के बाद **अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ अं अः** ये स्वर और **क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श स ह** ये व्यंजन लिखना चाहिए।

(निम्न मंत्र सात बार बोलकर बालक से स्वर और व्यंजन का उच्चारण कराना चाहिए एवं बालक को गुरु के चरणों में सिर झुकाकर नमोस्तु करवाना चाहिए। गुरु को प्रसन्नता पूर्वक णमोकार बोलते हुए निम्न मंत्रों से आशीर्वाद देते हुए बालक के सिर पर अक्षत क्षेपण करना चाहिए।)

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ अर्हते नमः सर्वज्ञाय सर्वभाषा भाषित सकल पदार्थाय बालकमक्षराभ्यासं कारयामि। द्वादशांगश्रुतं भवतु भवतु ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा।

शब्दपारगामी भव ।

अर्थ पारगामी भव ।

शब्दार्थ पारगामी भव ।

पश्चात् बालक से जिनेन्द्र भगवान को नमोस्तु कराके गुरु और वृद्धजनों से आशीर्वाद ग्रहण कराना चाहिए। पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन कर क्रिया संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए। अक्षराभ्यास पूरा होने के बाद पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ करवाना चाहिए।

❑ ❑ ❑

14. उपनीति (उपनयन/यज्ञोपवीत/सम्यक् अर्हता)-क्रिया/संस्कार

जन्म से लेकर बालक के अष्टम वर्ष के प्रवेश में अर्थात् सात वर्ष और तीन माह के पश्चात जैन कुलाचार के आगे जैन श्रावक अर्थात् जैनत्व के संस्कार देने वाली क्रिया को उपनीति (उपनयन/यज्ञोपवीत/सम्यक् अर्हता)-क्रिया/संस्कार कहते हैं। यज्ञोपवीत, ब्रह्मसूत्र, श्रावक का चिह्न, रत्नत्रय का सूचक एवं यज्ञचिह्न के रूप में जाना जाता है। इस संस्कार से बालक धर्म के प्रति आस्थावान एवं क्रियावान बनता है। इसे सम्यक्त्व अर्हता संस्कार भी कहते हैं। जैन परम्परा में बालक को आठ वर्ष के उपरांत सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के योग्य माना जाने लगता है अतः

बालक आठ वर्ष का होने पर जिनदर्शन, अभिषेक पूजन एवं आहार दान आदि का अधिकार प्राप्त करता है। यह संस्कार बालक के जीवन का महत्वपूर्ण संस्कार है, जिससे वह मोक्षमार्ग पर चलने के लिए सम्यक्त्वाचरण चारित्र को धारण करता है एवं लौकिक व्यवहार में भी सदाचार से जीने में कुशलता धारण करना सीखता है।

उपनीति (उपनयन/यज्ञोपवीत/सम्यक् अर्हता) क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. उपनयन संस्कार कराने वाला बालक मानसिक विकृत नहीं होना चाहिए।

२. संस्कार कराने वाला सात वर्ष तीन माह या आठ वर्ष से कम आयु का नहीं होना चाहिए।

३. उपनयन संस्कार धारण करने वाला मद्य, मांस, मधु, रात्रि भोजन एवं बिना छने पानी का त्यागी होना चाहिए।

४. मिथ्या देव, खोटे शास्त्र एवं कुगुरुओं का श्रद्धानी नहीं होना चाहिए।

५. सप्त व्यसन का त्यागी हो एवं बीड़ी, पान, तम्बाकू, सिगरेट आदि नशीले पदार्थों का भी त्यागी होना चाहिए।

६. उपनयन संस्कार धारण करने वाला शुद्ध शाकाहारी भोजन करने वाला एवं नित्य जिनदर्शन करने वाला होना चाहिए।

७. उपनयन संस्कार धारण करने वाला समस्त जीवों पर दया भाव रखने वाला होना चाहिए।

८. उपनयन संस्कार धारण करने वाले को यज्ञोपवीत की शुद्धि आदि का ध्यान रखना चाहिए।

९. उपनयन संस्कार धारण करने वाले को जब तक विवाह ना हो तब तक ब्रह्मचर्य से रहते हुए सदाचार से जीवन व्यतीत करना चाहिए।

१०. उपनयन संस्कार धारण करने वाले को खोटी संगति से बचना चाहिए।

उपनीति (उपनयन/यज्ञोपवीत/सम्यक् अर्हता)क्रिया/ संस्कार की विधि-

क्रियोपनीतिर्नामास्य वर्षे गर्भाष्टमे मता ।
यत्रापनीतकेशस्य मौजी सव्रतबन्धना ।।१०४ ॥
कृतार्हत्पूजनस्यास्य मौजीबन्धो जिनालये।
गुरुसाक्षिविधातव्या व्रतार्पणपुरस्सरम् ।।१०५ ॥
शिखी सितांशुकः सान्तर्वासा निर्वषविक्रियः ।
व्रत चिह्नं दधत्सूत्रं तदोक्तो ब्रह्मचार्यसौ।।१०६॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

गर्भ से आठवें वर्ष में बालक का उपनीति संस्कार होता है। इसमें केशों का मुण्डन, व्रतबन्धन तथा मौजीबन्धन की क्रियाएँ की जाती हैं।

जिनालय में जाकर अरिहंतदेव की पूजा करें, बालक को व्रत देकर मौजीबन्धन करना चाहिए।

चोटी, सफेद धोती दुपट्टा से सहित व्रत के चिह्न स्वरूप यज्ञोपवीत सूत्र धारण करने वाला ब्रह्मचारी कहलाता है।

गृहस्थाचार्य को यथासाध्य भेंट देकर विधि कराने की प्रार्थना करना चाहिए। बालक का शिखा सहित मुण्डन कराना चाहिए। स्नान कर श्वेत धोती दुपट्टा पहनकर संस्कार करवाना चाहिए। इस दिन दैनिक पूजन एवं हवन करना चाहिए।

ॐ ह्रीं अज्ञान तिमिर हरं दीपकं स्थापयामि।

स्थापित हुए मंगल दीपक के समक्ष संस्कार देने वाले गुरु या मुनि को णमोकार मंत्र का स्मरण करते हुए संस्कार धारण करने वाले बालक के ललाट पर चन्दन का तिलक लगाकर मुड़े हुए शीश पर केशर चंदन आदि से स्वस्तिक बनाकर निम्न मंत्रों के पाठ के साथ जल का सिंचन करते हुए पुष्प क्षेपण करना चाहिए।

परम निस्तारकलिंगभागी भव ।
परमर्षिलिंगभागी भव ।
परमेन्द्र लिंगभागी भव ।
परम राज्यलिंगभागी भव ।
परमार्हत्यलिंगभागी भव।
परम निर्वाणलिंगभागी भव ।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए कमर में तीन लड़ी वाला मौजी धागा बंधवाकर पुष्प क्षेपण करना चाहिए।)

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकर परमेश्वराय कटिसूत्रं कोपीन सहितं मौजीबन्धनं करोमि पुण्यबन्धो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा।

(निम्न मंत्र सुनते हुए संस्कार लेने वाले को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए एवं संस्कार देने वाले को संस्कार लेने वाले पर पुष्प क्षेपण करना चाहिए।)

ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकरणाय रत्नत्रय स्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए संस्कार प्रदाता को बालक की चोटी पर पुष्प रखकर जिनेन्द्र भगवान को अर्घ्य समर्पित करवाना चाहिए।)

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थकर परमेश्वराय ललाटे शेखरं शिखायां पुष्पं च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः।

यहाँ पर संस्कार धारण करने वाले बालक को अपने हाथ में श्रीफल, अर्घ्य आदि लेकर अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, मुनि आदि को विनय पूर्वक समर्पित करना चाहिए। संस्कार प्रदाता के द्वारा सुनाए गए णमोकार मंत्र एवं **ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं नमः** इन मंत्रों को संस्कार धारण करने वाले बालक को स्वीकार करना चाहिए।

यहाँ पर संस्कार धारण करने वाले को जिनेन्द्र भगवान को नमोस्तु करके गुरु और वृद्धजनों से आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिए। पश्चात् हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन कर क्रिया संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

१५. व्रतचर्या -क्रिया/संस्कार

अध्ययन काल पूर्ण होने तक विषय विकारों से बचने सामान्य श्रावकोचित सदाचरण को धारण हेतु क्रिया या संस्कार दिए जाते हैं वह व्रतचर्या -क्रिया/संस्कार कहलाते हैं। जीवन को पापों से, नैतिक पतन से और नवयौवन के होने वाले परिवर्तनों से मन की अस्थिरता या चञ्चलता एवं विकार मार्ग पर जाने से बचाने के लिए तथा तेजस्वी व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए व्रतचर्या संस्कार महत्वपूर्ण है। व्रतों के अभाव में अध्ययन काल संस्कार से रहित हो जाता है जो चारित्र हीनता के लिए संतान को सज्ज करता है अतः संतान को व्रतचर्या -क्रिया/संस्कार से अवश्य ही परिचित कराना चाहिए।

व्रतचर्या -क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. आवश्यक व्रतों को छोड़कर कोई भी व्रत जीवन पर्यन्त को नहीं देना चाहिए।

२. ग्रहण किए गए व्रतों की उपेक्षा नहीं करना चाहिए।

३. ग्रहण किए गए व्रतों को खण्डित नहीं करना चाहिए।

४. ग्रहण किए गए व्रतों के प्रति पूर्ण बहुमान रखना चाहिए।

५. व्रतचर्या -क्रिया/संस्कार ग्रहण करने वाले को सप्त व्यसन का त्यागी होना चाहिए।

६. बीड़ी, पान, तम्बाकू, सिगरेट, आदि नशीले पदार्थों का भी त्याग करना चाहिए

७. कोई भी व्रत ग्रहण करें वे सभी व्रत गुरु साक्षी में ग्रहण करना सर्वोत्तम माना जाता है।

८. व्रत ग्रहण करते समय मिथ्यात्व पोषक क्रियाओं का त्याग करना चाहिए।

९. विदेशी या पाश्चात्य संस्कृति एवं फैशन की चकाचौंध में श्रमण संस्कृति या जिनशासन के मूल सिद्धान्तों को नहीं भूलना चाहिए।

१०. व्रत पालन करने में विवेकशीलता रखना चाहिए।

व्रतचर्या -क्रिया/संस्कार विधि-

व्रतचर्या मतो वक्ष्ये क्रियामस्योपबिभ्रतः ।
कट्यूरूरः शिरोलिंगं मनूचान व्रतोचितम् ॥१०९ ॥
एवं प्रायेण लिंगेन विशुद्धं धारयेद् व्रतम् ।
स्थूल हिंसाविरत्यादि ब्रह्मचर्योपबृंहितम् ॥११४ ॥

दन्तकाष्ठग्रहो नास्य न ताम्बूलं न चांजनम् ।
न हरिद्रादिभिः स्नानं शुद्धस्नानं दिनं प्रति ॥११५ ॥
न खट्वाशयनं तस्य नान्यांग परिघट्टनम् ।
भूमौ केवलमेकाकी शयीत व्रत शुद्धये ॥११६ ॥
यावद् विद्या समाप्तिः स्यात् तावदस्येदृशं व्रतम् ।
ततोऽप्यूर्ध्व व्रतं तत् स्याद् तन्मूलं गृहमेधिनाम् ॥११७॥
सूत्रमौपासिकं चास्य स्यादध्येयं गुरोर्मुखात् ।
विनयेन ततोऽन्यच्च शास्त्रमध्यात्मगोचरम् ॥११८ ॥
शब्द विद्याऽर्थशास्त्रादि चाध्येयं नास्य दुष्यति ।
सुसंस्कार प्रबोधाय वैयात्यख्यातयेपि च ॥११९ ॥
ज्योतिर्ज्ञानमथच्छन्दोज्ञानं ज्ञानं च शाकुनम् ।
संख्याज्ञानमितीदं च तेनाध्येयं विशेषतः ॥ १२०॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

ब्रह्मचर्य व्रत का सूचक कमर का धागा, अरिहंत के पवित्र विशाल कुल के प्रतीक श्वेत वस्त्र, सप्त परमस्थान एवं रत्नत्रय स्वरूप यज्ञोपवीत, और मन वचन काय की पवित्रता के लिए सिर का मुण्डन, इन चिह्नों से विशुद्ध ब्रह्मचारी बालक को स्थूल हिंसादि का त्याग करना चाहिए। इस ब्रह्मचारी को वृक्ष की दातौन नहीं करना, पान नहीं खाना, अञ्जन नहीं लगाना, हल्दी आदि लगाकर स्नान नहीं करना चाहिए। वह प्रतिदिन शुद्धजल से स्नान करे। खाट, पलंग आदि पर नहीं सोना, दूसरे के शरीर से अपना शरीर नहीं रगड़ना, व्रतों की शुद्धि के लिए अकेला पृथ्वी पर शयन करे। जब तक विद्याध्ययन पूर्ण न हो तब तक उसे यह व्रत धारण करना चाहिए।

विद्याध्ययन पूर्ण होने पर वे व्रत धारण करने चाहिए जो कि गृहस्थों के मूलगुण कहलाते हैं। सबसे पहले इस ब्रह्मचारी को गुरु के मुख से श्रावकाचार फिर विनयपूर्वक अध्यात्मशास्त्र पढ़ना चाहिए। उत्तम संस्कारों को जाग्रत करने एवं विद्वत्ता प्राप्त करने के लिए इसे व्याकरण आदि शब्दशास्त्र, न्यायशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, छन्दशास्त्र, शकुनशास्त्र, गणितशास्त्र आदि का भी विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

16. व्रतावतरण -क्रिया/संस्कार

विद्याध्ययन पूर्ण होने पर जीवन भर के लिए सामान्य व्रतों का पालन तो किया ही जाता है साथ-साथ में कर्म निर्जरा के उद्देश्य से विशेष व्रतों का पालन भी करना व्रतावतरण क्रियाद्ध संस्कारित कहलाता है। व्रत धारण करने से जहाँ मोक्षसुख की प्राप्ति होती है वहीं स्वर्गादिक सांसारिक सुख भी प्राप्त होते हैं। व्रतों का पालन करना मनुष्य पर्याय में ही संभव है अतः व्रतों के माध्यम से अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए व्रतावतरण-क्रिया/संस्कार आवश्यक है।

व्रतावतरण -क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. व्रत ग्रहण करने के पूर्व उसके उद्देश्य की और फल की जानकारी प्राप्त करके ही व्रत ग्रहण करना चाहिए।

२. जो भी व्रत ग्रहण करें उनके पालन में उत्साह होना चाहिए।

३. छोटी मान्यताओं या मिथ्यात्व का पोषण करने वाले व्रतों को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

४. व्रत के दिन सहजता से समय व्यतीत करना चाहिए, लिपस्टिक, नेलपालिश या हिंसात्मक सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

५. व्रत ग्रहण करने वाले को समस्त व्यवसायों का एवं बीड़ी, पान, तम्बाकू, सिगरेट, आदि नशीले पदार्थों का त्याग अवश्य ही करना चाहिए।

६. व्रत गुरु अथवा मुनि के सान्निध्य में ही ग्रहण करने चाहिए।

७. व्रत ग्रहण करके शुद्धि का एवं मर्यादित भोजन करने का प्रयास करना चाहिए।

८. जिनशासन के आगमोक्त ही व्रत ग्रहण करना चाहिए।

९. ग्रहण किए गए व्रतों का पालन विधिपूर्वक ही करना चाहिए।

१०. ग्रहण किए गए व्रतों के प्रति बहुमान रखना चाहिए।

व्रतावतरण -क्रिया/संस्कार की विधि-

ततोस्याधीत विद्यस्य व्रतवृत्यवतरणम्।
चिशेषविषयं तुच्छ स्थितस्यौत्सर्गिके व्रतें ॥१२१॥
मधुमांसपरित्यागः पञ्चादुम्बर वर्जनम्।
हिंसादिविरतिश्चास्य व्रतं स्यात् सार्वकालिक॥१२२॥
व्रतावतरणं चेदं गुरुसाक्षिकृतार्चनम्।
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वमथवा षोडशात् परम् ॥१२३॥
कृतद्विजार्चनस्यास्य व्रतावतरणोचिम् ॥
वस्त्राभरणमाल्यादि ग्रहणं गुर्वनुज्ञया ॥१२४॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

जिसने समस्त विद्याओं का अध्ययन कर लिया है, ऐसे उसकी क्रिया होती है। इस क्रिया में वह साधारण व्रतों का तो पालन करता ही है परन्तु अध्ययन के समय जो विशेष व्रत ले रखे थे, उनका परित्याग कर देता है। इस क्रिया के बाद उसके मधुत्याग, मांसत्याग, मदिरात्याग, पंच उदुम्बरों का त्याग और हिंसादि पाँच पापों का त्याग, ये सदाकाल अर्थात् जीवनपर्यंत रहने वाले व्रत रह जाते हैं। यह व्रतावरण की क्रिया गुरु की साक्षीपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर बारह या सोलह वर्ष बाद करनी चाहिए। पहले गृहस्थाचार्य एवं व्रती जनों का सम्मान कर व्रत ग्रहण करना उचित है। इसके बाद आजीविकोपार्जन करें।

आचार्य मुनि आदि गुरु की पूजा कर निम्न मंत्र के साथ व्रत ग्रहण करना चाहिए।

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य ब्रह्मणो मतेस्मिन्न... वीरनिर्वाण...संवत्सरे मासानां मासे...पक्षे...तिथौ...वासरे जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे...प्रदेशस्य...जनपदे...नगरे एतत् अवसर्पिणी कालावसान श्री गौतमस्वामी श्रेणिक महामण्डलेश्वर समाचरित सन्मार्ग विशेषे अष्ट महाप्रातिहार्यादि शोभित श्रीमदर्हत्परमेश्वर प्रतिमा/ अष्टविंशति मूलगुण-आराधक मुनि ... सन्निधौ अहं... व्रतस्यसंकल्पं करिष्ये। अस्य व्रतस्य समाप्ति पर्यन्त मे सावद्य त्यागः गृहस्थाश्रमजन्यारम्भं परिग्रहादीनापि त्यागः।

पश्चात् जिनप्रतिमा या आचार्य मुनि आदि को श्रीफल/ अर्घ्य आदि चढ़ाकर गृहस्थाचार्य का, त्यागी-व्रती जनों और

आगंतुक महानुभावों का सम्मान करना चाहिए। पुनः बालक से जिनेन्द्र भगवान को नमोऽस्तु कराके गुरु और वृद्धजनों से आशीर्वाद ग्रहण कराके हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ एवं विसर्जन कर इस क्रिया/संस्कार को सम्पन्न करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

17. विवाह -क्रिया/संस्कार

बिना विवाह
धर्म का प्रवाह क्या
कभी चला है।

(हाइकु-आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज)

धर्म की परम्परा को निर्बाध रूप से आगे चलाने के लिए वर और वधू के मिलन को और गृहस्थ जीवन के प्रारंभ होने के संस्कार को विवाह कहते हैं। अनंत वासना को विवाह तक सीमित करना और अनंत पाप को नियंत्रण करने का नाम विवाह है क्योंकि हर एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य की साधना नहीं कर सकता है अतः वह विवाह करके अपने पापों को सीमित कर सकता है क्योंकि विवाह अनंत पाप का अनुबंध है किंतु इसके अभाव में धर्म का प्रभाह नहीं हो सकता सो प्रथम तो यह कि विवाह किया ही ना जाए किंतु अगर करना ही पड़ता है तो धार्मिक संस्कारों के अनुसार ही करना चाहिए। अगर धर्म की दृष्टि से देखा जाए तो हमारे २४ तीर्थंकर भगवान जो कि महापुरुष कहलाते हैं सभी विवाह करा के चारों पुरुषार्थों को पूर्ण करके अपना कल्याण करते हैं अर्थात विवाह करा के धर्म की परम्परा को आगे बढ़ाना यह महापुरुषों का कार्य है। इस विषय में बहुत से विचार इस प्रकार हैं।

धर्म सन्ततिमक्लिष्टां रतिं वृत्त कुलोन्नतिम्।
देवादिसत्कृति चेच्छन् सत्कन्या यत्नतो वहेत्॥६०॥

(सागार धर्मामृत अध्याय-२)

अर्थात् धर्म के लिए सन्तान को अथवा धर्म परम्परा चलते रहने को, विघ्न रहित स्त्री संभोग को, चारित्र तथा कुल की उन्नति को और देव, गुरु, अतिथि आदि के सत्कार को चाहने वाले श्रावक को प्रयत्न पूर्वक उत्तम कन्या से विवाह करना चाहिए। विवाह के मूल उद्देश्य एवं गृहस्थ धर्म अन्त तक नहीं भुलाना चाहिए।

श्री सोमदेव सूरि ने नीतिवाक्यामृत में लिखा है कि विवाह करके दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ करना चाहिए क्योंकि विवाह के अनेक सुफल है। जैसे- धर्म सन्तति, (धार्मिक सन्तान के द्वारा) निर्वाध संभोग, जिससे आवारागर्दी जैसे अनेक पापों पर नियंत्रण होता है और चारित्र का उन्नत होना, वंश परम्परा का चलना, अतिथि सत्कार आदि निर्बाध रूप से गतिमान रहते हैं।

अतिथि में मुनि-व्रती, बन्धु-बान्धव आदि आगन्तुकों का सत्कार पत्नी के द्वारा ही संभव है अतः दाम्पत्य जीवन, धर्म और समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। जहाँ-जहाँ धर्म है, वहाँ-वहाँ दाम्पत्य जीवन अवश्य रहता है। दाम्पत्य जीवन की परम्परा अनादिकाल से है।

इस परम्परा का निर्दोष, निर्वहन करके धर्म और समाज को उन्नत बनाकर अपने दाम्पत्य जीवन को सफल और आदर्श बनाना चाहिए।

अन्य दार्शनिकों की दृष्टि में विवाह क्या है ?

१. धार्मिक और लौकिक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए

सन्तान प्राप्ति के लिए गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना विवाह है।

२. कामवासना को सीमित करने और धीरे-धीरे उसपर विजय प्राप्त करने का सार्थक उपाय विवाह है।

३. गृहस्थ जीवन में धर्म, शौच, आचार विशुद्धि एवं पवित्रता का शुभारम्भ विवाह है।

४. धर्म नीति और संस्कृति की चिरन्तन विशुद्धि की रक्षा के लिए शास्त्र विधिसम्मत क्रिया विवाह है।

५. गृहस्थ जीवन का धर्म विवाह है।

विवाह का उद्देश्य-

१. धर्म, संतान, निर्विघ्न भोग विलास, आचार और कुल की उन्नति ।

२. देव, शास्त्र, गुरु एवं साधर्मी भाइयों की सेवा-सत्कार।

३. सप्त परम-स्थानों की प्राप्ति।

४. त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) की सिद्धि ।

विवाह -क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. अपनी कुल परम्परा के अनुसार जन्मकुण्डली का मिलान करके ही विवाह करना चाहिए किंतु समान गोत्र के वर एवं कन्या का विवाह नहीं करना चाहिए।

२. विवाह में पारदर्शिता रखते हुए दोनों पक्षों को अपव्यय से बचकर दिन में ही सम्पन्न करना चाहिए।

३. विवाह के सभी कार्यक्रमों में संगीत वाद्य यंत्र आदि आकर्षक होने चाहिए एवं शालीनता का परिचय देना चाहिए।

४. वर गुणवान एवं कन्या गुणवती हो एवं विवाह के समय वर की आयु २१ एवं कन्या को १८ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

५. वैवाहिक कार्यक्रमों में किसी भी संस्कार की उपेक्षा नहीं करते हुए धार्मिक परम्पराओं के अनुसार विवाह सम्पन्न करना चाहिए।

६. विवाह में लिए जाने वाले फेरों में शुद्धि का विशेष ध्यान रखकर मैं ही सम्पन्न करना चाहिए रात्रि में नहीं करना चाहिए।

७. विवाह में विवाद से बचकर जल्दबाजी न करके, फेरे जैन शास्त्रों में बताई गई विधि के अनुसार ही करवाना चाहिए।

८. अतिथियों को दिया जाने वाला भोजन अभक्ष्य पदार्थों से रहित दिन में ही होना चाहिए एवं उपहार भी धार्मिक होना चाहिए।

९. विवाह में दहेज का लेन-देन दोनों उत्तम नहीं है किंतु यदि चाहें ज्ञानवर्धक या उपयोगी उपहार दिया जा सकता है।

१०. आशीर्वाद के समय परिचय की स्वस्थ धार्मिक परम्परा रखते हुए अभिमान के पोषण से बचते हुए अपनी हैसियत के अनुसार ही कार्य करना चाहिए।

विवाह -क्रिया/संस्कार की विधि-

ततोस्य गुर्वनुज्ञानादिष्टा वैवाहिकी क्रिया।
वैवाहिके कुले कन्यामुचितां परिणेष्यतः ॥१२७॥
सिद्धार्चन विधिं सम्यक् निर्वर्त्य द्विजसत्तमाः।
कृताग्नित्रयसंपूजाः कुर्युः तत्साक्षितां क्रियाम् ॥१२८॥
पुण्याश्रमे क्व चित् सिद्धप्रतिमाभिमुखं तयोः।
दम्पत्योः परया भूत्या कार्यः पाणिग्रहोत्सवः ॥१२९॥

(आदिपुराण, पर्व ३८)

विवाह के योग्य कुल में उत्पन्न हुई कन्या के साथ जो विवाह करना चाहता है ऐसे उस पुरुष की गुरु आज्ञा से वैवाहिकी क्रिया की जाती है। उत्तम गृहस्थाचार्य सिद्ध भगवान की पूजाकर, तीनों अग्नियों की पूजा करके उनकी साक्षी पूर्वक इस वैवाहिकी क्रिया को करे। किसी पवित्र स्थान में बड़ी विभूति के साथ सिद्ध भगवान की प्रतिमा के सामने वर-वधू का विवाहोत्सव करना चाहिए।

विवाह मुहूर्त एवं मण्डप रचना

कुशल विद्वान से विवाह आदि के उचित मुहूर्त निकलवाकर विवाह की क्रियाएँ निम्न प्रकार से सम्पन्न करनी चाहिए।

पाणिग्रहण के एक दिन पूर्व घर के आँगन को मध्यभूमि के चारों दिशाओं में चार काष्ठ स्तम्भों से मण्डप तानकर उस पर आम्र अथवा जामुन के पल्लवों आच्छादन कर चारों स्तम्भों को लाल वस्त्र या गोटे से वेष्ठित कर मण्डप चौकोर बनाकर प्रत्येक स्तम्भ के सहारे एक के ऊपर एक पाँच-पाँच मिट्टी के कलश रखकर मण्डप को ध्वजा, तोरण, वन्दनवार, पुष्पमालाओं एवं दीपमालाओं से सुसज्जित करना चाहिए।

स्तम्भ (खाम)-मण्डप के केन्द्र में सुहागन महिलाओं द्वारा मंगलगान एवं मंत्रोच्चारण पूर्वक स्तम्भ (खाम) को आरोपित करना चाहिए।

काष्ठ चौकियों से तीन कटनी की वेदी बनाकर प्रथम कटनी पर सिद्ध यंत्र स्थापित कर दूसरी कटनी पर शास्त्र एवं तीसरी कटनी पर अष्ट मंगल द्रव्य स्थापित करना चाहिए।

वेदी के सम्मुख तीन हवन कुण्ड बना लें एवं हवन कुण्ड

सम्भव न हों तो मिट्टी के कुण्ड में केशर से रचना कर रंगोली से सज्ज करना चाहिए।

फेरों के समय रजस्वला कन्या सप्तपदी (भाँवर) के समय यदि कन्या रजस्वला हो तो चौथे दिन शुद्धि के उपरान्त पाँचवें दिन पूजन हवन में सहयोगी बन सकती है क्योंकि बिना शुचिता के कोई भी क्रिया समुचित नहीं मानी जाती है।

पाणिग्रहण (भाँवर) के लिए शुभ लग्न-मुहुर्त के अनुसार समस्त पूजन हवन, सप्तपदी के कार्य दिन में सूर्यास्त के पहले ही करना चाहिए।

वाग्दान-कन्या का पिता को अपने समान धर्मानुयायी सुलक्षणों युक्त योग्य वर को देखकर अपनी जातीय प्रथा के अनुसार गोत्रादिक का विचार कर वर-कन्या दोनों की जन्म पत्रिका के ग्रहों, योगों को मिलान कर विवाह के लिए वचनबद्ध होना चाहिए। समागत अतिथियों का यथाशक्ति भोजन-पानादि द्वारा सत्कार करना चाहिए।

वाग्दान (सगाई) के दिन सुहागिन स्त्रियों द्वारा मंगलगान वाद्ययंत्र मंगलाष्टकपूर्वक वर के पिता, मामा, फूफा आदि को खड़े होकर निम्न प्रकार से निवेदन करना चाहिए।

श्रीमान् ...नायक ....सेठ ...सिंघई ...चौधरी के पुत्र...के पौत्र एवं श्रीमान ...नायक ...सेठ ...सिंघई ...चौधरी ...जाति, गोत्र वाले नामधारी वर की सगाई श्रीमान ...नायक ...सेठ ...सिंघई ...चौधरी ...की पौत्री, श्रीमान् ...नायक ...सेठ ...सिंघई ...चौधरी ...की पुत्री ...जाति वाली ...गोत्र में उत्पन्न ...नामधारी कन्या के साथ करने का निश्चय किया है।

कन्या के पिता, मामा, फूफा आदि को भी खड़े होकर पूर्व प्रकार कहे वचनों को कहना चाहिए। दोनों पक्ष के व्यक्ति उपस्थित सभा से निवेदन करें कि यदि आप इसे उचित समझें तो इस सम्बन्ध को करने की आज्ञा दीजिए। पञ्चजनों को भी यदि उचित लगे तो सम्बन्ध करने की आज्ञा देना चाहिए। आज्ञा प्राप्त होने के बाद दोनों पक्षों को आपस में एक-दूसरे को श्रीफल, अष्ट द्रव्य, हल्दी, सुपारी रत्नराशि आदि देकर सम्बन्ध पक्का करना चाहिए।

लग्न पत्रिका लेखन-

लग्न का कार्य वाग्दान (सगाई) के पश्चात् कोई भी शुभ दिन निश्चित कर कन्या के पिता या अभिभावक द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसके मुख्य तीन अंग हैं-

१. लग्न पत्रिका लेखन
२. लग्न पत्रिका प्रेषण
३. लग्न पत्रिका वाचन

१. लग्न पत्रिका लेखन विधि-

लग्न पत्रिका में वैवाहिक कार्यक्रम की निर्धारित तिथियों का संदेश एवं सम्बन्ध की प्रशस्तियाँ रहती हैं। लग्न लेखन के दिन प्रातः, कन्या, सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ जिनमन्दिर जाकर मंगलाष्टक दैनिक पूजा, सिद्धपूजा और विनायक यंत्र पूजा करें। उपरान्त इष्टजन और पञ्चों को एकत्रित कर, वस्त्राभूषण से अलंकृत कन्या को सौभाग्यवतियों के बीच चौक में उच्चासन पर बिठाकर तिलक करके अभ्यागत विद्वान् को लग्न लेखन विधि करना चाहिए।

एक सुन्दर कलश में कुछ मांगलिक राशि, हल्दी, सुपाड़ी, पीली-सरसों, पुष्प एवं जल भरकर कलश पर तीन स्वस्तिक बनाकर ऊपर पीले वस्त्र के सहित नारियल रखकर पञ्चरंग सूत्र से बाँधकर मंगल कलश सजाकर दीपक जलाकर बाजौटा पर पीले चावल से स्वस्तिक बनाकर कलश एवं दीपक स्थापित करना चाहिए।

लग्न पत्रिका का प्रारूप

श्री शुभ विवाह लग्न पत्रिका

॥ श्री वृषभजिनाय नमः ॥

मङ्गलं भगवान वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥
मंगलं भगवान्नर्हन् मंगलं सुसिद्धेश्वरः,
मंगलं श्रमणाचार्यो मंगलं साधुपाठकौ।
मंगलं जिननामानि मंगलं नवदेवता,
मंगलं शाश्वतमंत्रं मंगलं जिनशासनं॥

वर	वधु
चि.	सौ. कां
आत्मज	आत्मजा

श्रीमानस्मान् वितरतु सदा आदिनाथः प्रियां वै।
श्रेया लक्ष्मी क्षितिपति गणैः सादरं स्तूयमानां॥

भर्तुर्यस्य स्मरणकरणात्तेऽपि सर्वे विवस्वन् ।
मुख्याखेटा ददतु कुशलं सर्वदा देहभाजाम् ॥
वंशो विस्तारतां यातु कीर्तियां दिगन्तरे।
आयुर्विपुलतां यातु यस्यैषा लग्न पत्रिका ॥
यावन्मेरुर्धरापीठे यावच्चन्द्र दिवाकरौ ।
तावन्नन्दतु बालोऽयं यस्यैषा लग्न पत्रिका ॥

श्री वृषभजिनाय नमः । अथ श्री शुभ संवत्सरे श्रीमन्नृपति वीर विक्रमादित्य राज्योदयात् गताब्दा (संवत्) २०.... श्री शालिवाहन शकाब्दा २०... वीर निर्वाण संवत्सरा २२...तत्र...चैत्रा गुरु मानेन...नाम सम्वत्सरे श्री सूर्येयणे ऋतौः श्रीमहामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमेः मासेशुभेः पक्षेः तिथौः मण्डपाच्छादनं शुभम्। पुनः ...मासे शुभेः ...पक्षे ...तिथौ ...वासरेमृत्तिकानयनं (मागरमाटी अरगना) शुभम् । पुनः मासे शुभे पक्षे ...तिथौ ...वासरे ...वर यात्रायाः (बरात) आगमनं (आगोनी) विनायक (सिद्ध) यंत्र पूजा, द्वारोत्सवश्च शुभम्। मासे शुभेः ...पक्षे ...तिथौः ...वासरे वर यात्रायाः (बारात) आगमनं (आगौनी) विनायक (सिद्ध) यंत्र पूजा द्वारोत्सवश्च शुभं। पुनः ...मासे शुभे ...पक्षे ...तिथौ ...वासरे जिनगृह वंदनम्। गीतमाङ्गल्यादिकं शुभम्। वर वध्वौ पुनः चिरञ्जीविनो भूयास्ताम् ।

लग्न पत्रिका में प्रदक्षिणाध् भाँवर (फेरे) के मुहूर्त आदि का लेखन करके मंगलाष्टक पढ़ता हुआ पुष्प क्षेपकर और उस लग्न पत्र में हल्दी गाँठ, सुपारी, पीली सरसों, पुष्प और नगद कुछ

मांगलिक राशि रखकर पञ्चरंग सूत्र से बाँधकर एक थाल में रखकर कन्या के कर कमलों से लग्न पत्रिका का स्पर्श कराके उसे पञ्चों को सौंप देना चाहिए। कन्या के पिता को पञ्चों का यथा योग्य सम्मान करना चाहिए।

२. लग्न पत्रिका प्रेषण विधि–

कन्या के अभिभावक सिद्धयन्त्र की पूजा करके, लग्न पत्रिका को मांगलिक वस्तुओं एवं वस्त्र आभूषणों के साथ वधू के भाई, मामा, चाचा या किसी विश्वस्त व्यक्ति के हाथ वर के पिता के पास भेज देना चाहिए।

३. लग्न पत्रिका वाचन विधि–

यह क्रिया वर पक्ष के यहाँ सम्पन्न होती है। सर्वप्रथम वर के अभिभावक को विनायक यन्त्र की पूजन कर इ़ष्ट आत्मीय बन्धुओं को सम्मानपूर्वक एकत्र कर उनके ही समक्ष गृहस्थाचार्य द्वारा लग्नपत्रिका का वाचन कराना चाहिए। एक बाजौटे या चौकी पर पीले चावलों से स्वस्तिक बनाकर कलश में कुछ मांगलिक राशि, सुपारी, हल्दी की गाँठ, पीलीसरसों और पीले चावल छोड़कर जल भर देना चाहिए। कलश को स्वस्तिक, पुष्प हार से सजाकर एक चौमुखा दीपक जलाकर रखना चाहिए।

वाचक विद्वान् को जय ध्वनि पुष्पवृष्टि करते हुए मंगलाष्टक पाठ और नौ बार णमोकार मंत्र पढ़कर वर को तिलक लगाकर माला पहनाना चाहिए तथा वधू पक्ष के यहाँ से आए हुए वस्त्राभूषणों पहनाना चाहिए और उसे वह लग्न पत्र सौंपें वर महोद यह लग्न पत्र समाज के श्रेष्ठ मुखिया को सौंपना चाहिए तथा

मुखिया को भी तिलक और माला आदि से वाचक विद्वान् का उचित सत्कार कर वह लग्न पत्र सौंपना पश्चात् वाचक को लग्न पत्र बाँचकर उपस्थित जन समुदाय को सुनाना चाहिए फिर वर के अभिभावक को अपना स्वीकृति सूचक पत्रोत्तर उसी पत्रवाहक को सौंपकर यथायोग्य सम्मान कर उसे विदा कर देना चाहिए।

अर्घ्य वितारण एवं विनायकी (अरगा)

ये दोनों क्रियाएँ विवाह के तीन दिन पूर्व से वर एवं कन्या के यहाँ अपने-अपने घरों में ही सम्पन्न करनी चाहिए। तभी से कन्या अभय नायिका का पद प्राप्त करती है और वहाँ वर विशेष नायक का पद प्राप्त करता है। विनायक यन्त्र स्थापना-विवाह जैसे मांगलिक कार्य की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए विवाह के कम से कम तीन या पाँच दिन पूर्व कन्या और वर को अपने-अपने यहाँ के जिनमन्दिर में जाकर शुभ मुहूर्त में विनायक यन्त्र की पूजा करना चाहिए। घर आकर गृहस्थाचार्य को कन्या के बाएँ हाथ और वर के दाएँ हाथ में कंकण बन्धन करना चाहिए। इन्हें विनायक यन्त्र की प्रतिदिन पूजा भी करनी चाहिए।

स्तम्भ (खाम/थाम) आरोहण विधान

गृहांगण के मध्य भाग में चार हाथ लम्बी चौड़ी चबूतरी की रचना करके ठीक कटनी के पीछे मध्य में स्तम्भ के अनुसार गड्ढा खुदवाकर सात सुहागिनों को उस स्तम्भ को मङ्गलगानपूर्वक आँगन में जहाँ विवाह वेदी तैयार हुई है, लाकर एक स्थान पर रख देना चाहिए उसी समय गृहस्थाचार्य को कन्या को पूर्व मुख बिठा

ले तथा उन्हीं सात सुहागिनों को वहीं खड़ी करके जो गर्त स्तम्भ रोपने के लिए खुदाया है उसके ऊपर चावलों का स्वस्तिक बनाकर कन्या के सामने जिसके चारों और स्वस्तिक बनाया गया है, ऐसे मंगल कलश को स्थापन करना चाहिए।

पश्चात् उन्हीं सात सुहागिनों व कन्या के ललाट पर तिलक लगवाकर बाएँ हाथ में मौली बाँध दें तथा प्रत्येक के हाथ में सुपारी, हल्दी, सरसों, अक्षत तथा पुष्प देकर मंगलाष्टक पढ़कर कलश में डलवाकर कुछ मांगलिक राशि कन्या के हाथ से उसी कलश में डलवाकर मुख पर श्रीफल रखके लाल कपड़ा और ऊपर से मौली लपेटकर माला पहनाकर स्थापना कर मंगलाचार पूर्वक स्तम्भ (खाम/थाम) स्थापित करना चाहिए।

घुड़चढ़ी (निकासी)

बारात चढ़ने से कुछ समय पूर्व वर को स्नान कराकर वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर मुकुट बन्धन करवाना चाहिए। पश्चात् नवदेव पूजन कर तिलक, रक्षाबन्धन कर आशीर्वाद के पुष्पक्षेपण करना चाहिए।

लौकिक शिष्टाचार को पूर्णकर गाजे-बाजे के साथ सौभाग्यवती स्त्रियों के मंगलगानपूर्वक श्वसुर को गृह यात्रा की निर्विघ्न पूर्णता और मंगल कामना हेतु श्री जिनालय में जाकर भगवान का दर्शन स्तवन वन्दना करना चाहिए एवं यथाशक्ति श्रीफल व कुछ द्रव्य भेंटकर अपने कुटुम्बी, भाई-बन्धुओं और बारातियों के साथ, उत्सव के साथ घोड़े पर सवार होकर श्वसुर के घर पर जाने के लिए प्रस्थान कराना चाहिए।

सज्जन मिलावा

कन्या का पिता को अपने सम्बन्धियों एवं स्थानीय पंचायत के सज्जनों को लेकर वरपक्ष वालों के यहाँ जनवासे (ठहरने का स्थान) में जाना चाहिए। वरपक्ष वालों को भी कन्या पक्ष वाले सज्जनों को आता हुआ देखकर खड़े होकर उन्हें बड़े सत्कार से बैठाना चाहिए फिर उभय पक्षों के सम्बन्धियों को क्रमशः परस्पर हार्दिक प्रेम प्रकट करते हुए गले मिलना चाहिए। इसी का नाम सज्जन मिलावा है।

कन्या पक्ष वालों को भी वर पक्ष वालों के लिए अपनी शक्ति अनुसार इस समय कुछ-कुछ मांगलिक राशि देना चाहिए जो विवाह का विनायक द्रव्य समझा जाता है। इसी समय वर को पगड़ी बाँधकर, तिलक कर, रक्षा सूत्र बाँधकर कन्यापक्ष वालों को वरपक्ष वालों से यह कहना चाहिए कि आप सर्व सज्जन तोरण आदि विधान में वर के साथ पधारिएगा।

तोरण विधि

जब बारात और वर गाजे-बाजे के साथ टीका के हेतु कन्या के दरवाजे पर आए तब दो सौभाग्यवती स्त्रियों को जल और मङ्गलद्रव्य सहित धातु के दो कलशों एवं दीपक कलश सहित लेकर वर पक्ष की अगवानी को खड़ी होना चाहिए।

गृहस्थाचार्य को पुष्पवृष्टि करते हुए मङ्गलाष्टक पढ़ना चाहिए। सौभाग्यवतियों को इस समय पुष्पवृष्टि करना चाहिए इस समयावधि में वादित्रनाद बीचों-बीच होता रहना चाहिए।

गृहस्थाचार्य को तिलक मंत्र पढ़ते हुए कन्या के पिता, काका, मामा आदि से वर को माला पहनवाकर चन्दन आदि से तिलक करवाकर उपस्थित सज्जनों से वर पर पुष्पवृष्टि करवाना चाहिए।

(निम्न मंत्र को पढ़ते हुए वर को तिलक और नाल बंधन कराना चाहिए।)

मङ्गलं भगवान वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोऽस्तु मङ्गलम्॥
मंगलं भगवान्नर्हन् मंगलं सुसिद्धेश्वरः,
मंगलं श्रमणाचार्यो मंगलं साधुपाठकौ।
मंगलं जिननामानि मंगलं नवदेवता,
मंगलं शाश्वतमंत्रं मंगलं जिनशासनं॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अस्य सर्वाङ्गशुद्धिं कुरुत कुरुत स्वाहा।

(निम्न छंद पढ़कर वर पर पुष्प क्षेपण करना चाहिए।)

दीर्घायुरस्तु शुभमस्तु सुकीर्तिरस्तु,
सद्बुद्धिरस्तु धनधान्यसमृद्धिरस्तु ।
आरोग्यमस्तु विजयोऽस्तु महोऽस्तु पुत्र,
पौत्रोद्भवोऽस्तु तव सिद्धपतिप्रसादात् ॥ १ ॥

(गृहस्थाचार्य को निम्न मंत्र पढ़ते हुए वर को वस्त्राभूषण भेंटकर मस्तक और वस्त्रों पर अक्षत वृष्टि करना चाहिए।)

भूयात्सुपद्म-निधि सम्भव-सारवस्त्रं,
भूयाच्च कल्पकुजकल्पित-दिव्यवस्त्रम् ।
भूयात्सुरेश्वर समर्पित सार वस्त्र,
भूयान्मयार्पितमिदं च सुखाय वस्त्रम् ॥ १ ॥

ॐ परमेश्वराय नमः ।

इस समय वस्त्राभूषणों से सुशोभित और अक्षत सहित पात्र को हाथ में लिए हुये कन्या की माता या अन्य सुहागिन स्त्रियाँ वर के मुखचन्द्र को अवलोकन कर मिले हुए धान के खीलों की अंजलि वर के ऊपर फेंकना चाहिए और श्वेत सरसों, पुष्प, अक्षत तथा दीपकों के समूह सहित थाल लेकर वर की आरती करना चाहिए और इसी समय स्त्रियों के समूह को प्राप्त होकर कन्या को भी वर को निहारना चाहिए।

वरमाला (वरण) विधि-

वरण विधि प्रदक्षिणा (भाँवर/फेरे) के समय की जाती है किन्तु आज तोरण विधि के बाद वरणविधि का प्रचलन है। इसके उपरान्त नगरवासी (बाराती) व्यक्ति विवाह विधिपूर्ण मानकर वापस होने लगते हैं। वरमाला वरण विधि है, इसमें गम्भीरता, शालीनता एवं मर्यादापूर्ण कार्य होना चाहिए। सर्वप्रथम कन्या को वर के लिए माला पहनाना चाहिए तदुपरान्त वर को कन्या के लिए माला पहनाकर वरण करना चाहिए।

पिता, मामा, फूफा, काका आदि परिजन एवं वरिष्ठ बाराती गण को वर-वधू को आशीर्वाद एवं शुभकामनाएँ प्रदान करना चाहिए। अरगोती के अनुसार वर पक्ष के द्वारा लायी गई समस्त सामग्री पञ्चों के समक्ष कन्या पक्ष को सौंप देना चाहिए।

प्रदक्षिणा (भाँवर)-कन्या के गृह, विवाह मण्डप में जाकर वेदी, कुण्ड, अष्टद्रव्य, हवन सामग्री, चतुः कलश, मङ्गलकलश, यंत्र शास्त्र स्थापना करके वेदी व वर का मुख पूर्व या उत्तर की ओर ही रखना चाहिए। वर और कन्या को स्नान करके श्रीफल लेकर

अलग-अलग श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने को जिनमन्दिर जाना चाहिए। जब वर दर्शन करके गाजे-बाजे के साथ कन्या के घर आए तो अक्षत, पुष्प और चतुर्मुख दीपक सहित थाल या हाथ में लेकर कन्या की माता को अपने भवन के बाहर आकर वर को वस्त्राभूषण मुद्रिका आदि प्रदान करना चाहिए। कन्या के मामा को भी कन्या के लिए लिवा लाकर मण्डप में पहुँचा देना चाहिए।

गृहस्थाचार्य को मङ्गलाष्टक दिग्बन्धन, रक्षामंत्र एवं शान्ति मंत्राराधन करते हुए ईशान कोण में मंगल कलश स्थापित कर पवित्र जल वर व कन्या पर छिड़ककर कंकण बंधन दाएँ हाथ में करके विनायक यंत्र अभिषेक पूजा एवं हवन हेतु सप्त परम स्थान की आहूति करना चाहिए।

ॐ ह्रीं सज्जाति परम स्थानाय नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं सद्गृहस्थत्वपरमस्थानाय नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं पारिव्राज्यपरमस्थानाय नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं सुरेन्द्र परम स्थानाय नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं परमसाम्राज्यपरमस्थानाय नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं परमार्हन्त्यपरमस्थानाय नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं परमनिर्वाणपरमस्थानाय नमः स्वाहा।

सप्तपदी पूजा

वरण विधि के समय निम्न प्रकार से पूजा कराना चाहिए-

ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानसमूह ! अत्रावतर अवतर संवौषट् आह्वानम् ! ॐ ह्रीं श्री सप्तपरम स्थान समूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् । ॐ ह्रीं श्री सप्तपरम स्थान समूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सान्निधिकरणम्। (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानेभ्यः सुगन्धं निर्वपामीति स्वाहा ॥१२॥
ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानेभ्योऽक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसप्तपरमस्थानेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥
ॐ ह्रीं सप्तपरमस्थानेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं सप्तपरम स्थानेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाणि-पीडन-विधि-

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए कन्या के पिता को किसी सुहागिन स्त्री के द्वारा पिसी हुई हल्दी या मेहँदी अपनी कन्या के बायें हाथ और वर के दाहिने हाथ पर लेपन कराना चाहिए।)

ॐ ह्रीं कन्यायाः वामकरे हरिद्रा लेपनं करोमि ।

ॐ ह्रीं वरस्य दक्षिणकरे हरिद्रा लेपनं करोमि ।

निम्न पंक्तियाँ पढ़ते हुए गृहस्थाचार्य को कन्या का हाथ ऊपर और वर का हाथ नीचे कर दोनों के हाथ जुड़वाकर उन पर कुछ मांगलिक राशि रखकर निम्न मंत्र पढ़ते हुए कन्या के पिता के द्वारा सुगंधित जल की तीन बार धारा छुड़वाते हुए कन्यादान करना चाहिए।

१. ॐ अद्य जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे...नगरे मांगलिक विवाहस्थले... श्री वीर निर्वाण संवत्सरे... मासे...तिथौ...दिवसे परमजैनधर्म परिपालक। गोत्रोत्पन्नाय... पुत्राय... पौत्राय... नाम्ने कुमाराय जैनधर्म पारिपालकस्य... गोत्रोत्पन्नस्य... पुत्रीं... पौत्रीं... नाम्नी इमां कन्या प्रदामि।

२. ॐ नमो भगवते श्रीमते वर्धमानाय श्रीबलायुरारोग्य सन्तानाभि-वर्धनं भवतु ...कन्यामिमाम्...कुमाराय ददामि झ्वीं झ्वीं सः स्वाहा।

(उपर्युक्त दोनों मंत्रों में से किसी एक मन्त्र को पढ़कर कन्या के पिता को उन जुड़े हाथों पर अक्षत तथा कुछ मांगलिक राशि रखकर अपने हाथ में ली हुई झारी से सुगन्धित जल की तीन धारा वर के हाथ पर छोड़कर कन्या प्रदान (कन्यादान) करना चाहिए।)

उसी समय सौभाग्यवतियों को भी वर और कन्या के ऊपर मङ्गलस्वरूप अक्षत क्षेपण करना चाहिए।

[**नोट**-इस समय कन्या और वरपक्ष दोनों को मन्दिर एवं धार्मिक संस्थाओं के लिए यथाशक्ति दान अवश्य करना चाहिए।]

ग्रन्थि-बन्धन (गँठजोड़ा)-

ॐ ह्रीं वरवधोः प्रेमानुबन्धनाय ग्रन्थिबन्धनं करोमि।

गृहस्थाचार्य को मन्त्र बोलते हुए और सौभाग्यवती स्त्रियों के द्वारा कन्या की ओढ़नी (चादर) के एक कोने में कुछ मांगलिक राशि, पुष्प, एक सुपारी व एक गाँठ हल्दी तथा वर के दुपट्टे के कोने में कुछ मांगलिक राशि, पुष्प, एक सुपारी व एक गाँठ हल्दी बाँधकर कन्या की गाँठ को वर के दुपट्टे से बाँधना चाहिए।

इस गँठजोड़े का अर्थ यह है कि इस भावी दम्पती की समस्त लौकिक और धार्मिक क्रियाओं में आजीवन दृढ़ प्रेमगाँठ बँध चुकी है, वह कभी नहीं खुल सकती क्योंकि ये देव, अग्नि और पंचों की साक्षीपूर्वक ग्रन्थिबन्धन से प्रतिज्ञाबद्ध हुए हैं। यह प्रेमानुबन्धन पति-पत्नी के अकाट्य एवं चिरस्थायी प्रेम का द्योतक है।

मुकुट बन्धन

यहाँ दोनों पक्ष की सौभाग्यवती स्त्रियों को अपने अपने वर तथा कन्या को मुकुटबन्धन करना चाहिए तथा दोनों पक्ष वालों को भी अपनी-अपनी सौभाग्यवती स्त्रियों को भेंट देकर सन्तुष्ट करना चाहिए।

सप्तपदी (परिक्रमा और सप्तवचन)

गृहस्थाचार्य को वर के लिए पीछे और कन्या के लिए आगे कर सप्तपरमस्थान की प्राप्ति के लिए वेदी के चारों तरफ प्रदक्षिणा दिलवाना चाहिए और प्रत्येक प्रदक्षिणा (भाँवर) के अन्त में जब वर और कन्या वेदी के सम्मुख अपने-अपने स्थान पर आ जाएँ तब निम्न क्रम से एक-एक अर्घ्य चढ़वाना चाहिए । मण्डप में उपस्थित सभी स्त्री-पुरुषों को प्रदक्षिणा देते हुए वर और कन्या पर पुष्पवृष्टि करते रहना चाहिए। वादित्रनाद भी होते रहना चाहिए।

ॐ ह्रीं सज्जातिपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं सद्‌गृहस्थपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं पारिव्राज्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं सुरेन्द्रपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं साम्राज्य परमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं आर्हन्त्यपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
ॐ ह्रीं निर्वाणपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इस प्रकार से छह प्रदक्षिणा पूर्ण होने पर गृहस्थाचार्य को वर कन्या से पूछना चाहिए कि तुम्हें कुछ कहना है क्या? तब वर को कन्या से निम्न लिखित सात वचन माँगना चाहिए।

वर के सप्त वचन-

१. मेरे गुरुजन और कुटुम्बियों की यथायोग्य विनय और सेवा करनी होगी।

२. मेरी आज्ञा का भंग नहीं करना होगा।

३. कठोर और अप्रिय वचन कभी भी किसी से नहीं बोलने होंगे।

४. घर पर मेरे हितैषी तथा सत्पात्रों के आने पर उनको आदर सत्कार और आहार आदि के देने में कलुषित मन नहीं करना होगा।

५. मेरी आज्ञा बिना दूसरे के घर नहीं जाना होगा।

६. जहाँ बहुत भीड़ हो, ऐसे मेला आदि में तथा जिनका आचरण और धर्म कुत्सित है ऐसे मद्यादि पीने वाले तथा विधर्मियों के घर कभी नहीं जाना होगा।

७. अपनी कोई भी गुप्त बात मुझसे नहीं छिपानी होगी और मेरी कोई भी गुप्त बात किसी दूसरे से नहीं कहनी होगी।

यदि मेरे इन सात वचनों को भली-भाँति प्रतिज्ञा रूप से स्वीकार करें, तो मेरी वामाङ्गनी हो सकती हो। तब कन्या को भी कहना चाहिए कि यदि आप भी मेरे सात वचनों को स्वीकृत करें, तो मैं आपके सात वचनों को स्वीकार कर सकती हूँ।

कन्या के सप्तवचन-

१. अपना सदाचार (शील) सदा सुरक्षित रखना होगा।

२. जुआ आदि सप्तव्यसन का त्याग करना होगा।

३. अपनी सम्पत्ति पर मुझे अपने समान अधिकार देना होगा।

४. न्याय और उद्योग से उपार्जित धन से मेरे भोजन, वस्त्र, आभूषण की व्यवस्था करते हुए मेरी रक्षा करनी होगी।

५. तीर्थस्थान, जिनमन्दिर आदि धर्मस्थानों को जाने में बाधक नहीं होते हुए धार्मिक कार्यों से मुझे वञ्चित नहीं करना होगा।

६. अज्ञान या प्रभात से होने वाली त्रुटि/अपराध का अनुचित और कठोर दण्ड मुझे नहीं देना होगा।

७. मुझे जीवन पर्यन्त नहीं त्यागना होगा।

पूर्वोक्त सात वचनों को सुनकर वर कहे कि मुझे ये सात वचन स्वीकार हैं। तब गृहस्थाचार्य कन्या को वर के बायें भाग में खड़ा करा देवे। तदनन्तर गृहस्थाचार्य को वर के लिए आगे और कन्या के लिए पीछे कराकर शेष रही सातवीं प्रदक्षिणा पूर्ण कराके निम्न अर्घ्य चढ़ाने के बाद कन्या वर को तथा वर कन्या को वरमाला पहनाना चाहिए। इस समय वादित्र नाद, जयध्वनि, पुष्प वर्षा और मङ्गलगान होते रहना चाहिए। पश्चात् गृहस्थाचार्य उन नव-दम्पती को वेदी के पास वर की बायीं ओर वधू को बैठाकर निम्न अर्घ्य चढ़वाकर जयमाला पढ़नी चाहिए।

ॐ ह्रीं श्री निर्वाणपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(त्रिभंगी)

जय जीवदयाकर, गुण रत्नाकर, सुखकर निर्मलशीलधरा।
भविकुमुद दिवाकर, जनकलि मलहर, सुखकर निर्मल शीलधरा॥
अजरामर केवललक्ष्मिवरं, हरिवंश सरोज विकास करम्।
परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥१॥
यम-संयम-भावधुरं धवलं, भव-वारिधि सौख्यकरं सकलं।

परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥२॥
अति कज्जलमेघ सुवर्णधरं, प्रतिबोध सुभव्य समूहवरम्।
परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥३॥
निजभास्वर तर्जितभानुरुचिं, कृतदुर्धर कामकलत्र सुखम्।
परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥४॥
नयतत्त्वसमर्पित-चारुमुखं, हृदयांगमरूपसुचन्द्र-मुखम्।
परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥५॥
मदमान महीधर भेदकरं, गुणरत्ननन्दि कृतसारतरम्।
परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥६॥
कृतदुर्धर घोर तपोविमलं, हृदयेप्सित सौख्यकरं प्रथुलं।
परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥७॥
सुविवेकगृहं हतजन्ममदं, कुमतान्ध तमोहिविधामरविम्।
परिपूज्य-सुसप्तस्थानवरं, अतिनिर्मल-भेदलहं सुवरम्॥८॥
श्रीनेमिचन्द्र हो, कुमुदचन्द्र हो, थुवयं सो विद्यानन्द मुनिः।
अविचल सुखकारण, भवजलतारण, वारण दुर्गति जिनशरणं ॥

ॐ ह्रीं श्री सप्तपरमस्थानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

॥ इत्याशीर्वादः ॥

(पुण्याहवाचन शान्तिपाठ एवं विसर्जन कर विवाह क्रिया को सम्पन्न करना चाहिए।)

❑ ❑ ❑

18. (अ) वर्णलाभ क्रिया/संस्कार

विवाह के पश्चात आजीविका, धार्मिक कार्यों का उत्तरदायित्व, सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति निष्ठा, स्वतंत्रता एवं उत्साह के लिए पिता को बालक के लिए अन्वयदत्ती के अनुसार समुचित धन सम्पत्ति एवं आवास आदि देना वर्णलाभ संस्कार कहलाता है। इससे बालक का मनोबल, आत्मबल एवं इच्छाशक्ति जाग्रत होती है जो उसके चतुर्मुखी विकास के साधक होते हैं।

वर्णलाभ क्रिया/संस्कार की सावधानियाँ-

१. बालक को समुचित धन राशि अवश्य दे देना चाहिए।

२. बालक के अलग रहने पर भी उसे माता-पिता का संरक्षण मिलना चाहिए।

३. बालक को अलग रहने पर भी माता-पिता की सेवा करते रहना चाहिए।

४. माता-पिता को ध्यान रखना चाहिए कि बालक की स्वतंत्रता स्वच्छन्दता में परिवर्तित ना हो जाए।

५. बालक को भी अपने धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

वर्णलाभ क्रिया/संस्कार विधि-

उद्धार्योऽप्ययं तावदस्वतंत्र गुरोर्गृहे।
ततः स्वातन्त्र्यसिद्धयर्थं वर्णलाभोऽस्यवर्णितः॥१३६॥
गुरोराज्ञया लब्ध धन धान्यादि संपदः ॥
पृथक्कृतालयस्यास्यै वृत्तिर्वर्णाप्तिरिष्यते ॥१३७॥

तदापि पूर्ववत्सिद्ध प्रतिमानर्चमग्रतः।
कृत्वाऽस्योपासकान् मुख्यान् साक्षीकृत्यापयेद् धनम्॥१३८॥
धनमेतदुपादाय स्थित्वाऽस्मिन् स्वगृहं पृथक् ।
गृहिधर्मस्वया धार्य कृत्स्ना दनादिलक्षणः ॥१३९ ॥
यथाऽस्मत्पितृदत्तेन धनेनास्माभिरर्जितम्।
यशोधर्मश्च तद्ववं यशोधर्मानुर्जय ॥१४०॥
इत्येवमनुशिष्यैनं वर्णलाभे नियोजयेत् ।
सदारः सोऽपि तं धर्म तथानुष्ठातुमर्हति॥१४१॥

(आदिपुराण, पर्व-३८)

बालक का विवाह हो चुका है तथापि वह पिता के घर रहता है तब तक परतंत्र ही है इसलिए उसको स्वतंत्रता प्राप्त कराने के लिए यह वर्णलाभ की क्रिया कही गई है। पिता की आज्ञा से जिसे धन-धान्य आदि सम्पदाएँ या पृथक निवास भी प्राप्त हो चुका है, ऐसे पुरुष की स्वतंत्र आजीविका करने लगने को वर्णलाभ कहते हैं।

इस क्रिया के समय भी पहले के समान सिद्धपूजा कर पिता अन्य मुख्य श्रावकों को साक्षी कर उनके सामने पुत्र को धन अर्पण करना चाहिए तथा यह कहना चाहिए कि यह धन लेकर तुम इस घर में पृथक रूप से रहो। तुम्हें दान, पूजा आदि समस्त गृहस्थ धर्म का पालन करते रहना चाहिए। जैसे मेरे पिता के द्वारा दिए हुए धन से मैंने यश और धन अर्जित किया है वैसे ही तुम भी यश और धन का अर्जन करो। इस प्रकार पुत्र को समझाकर पिता उसे वर्ण लाभ में नियुक्त करें जिससे वह सदाचार का पालन करता हुआ पिता-धर्म का पालन करने में समर्थ हो सके।

18. (ब) दत्तक पुत्र-संस्कार

पिता के धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक उत्तरदायित्व को संभालने के लिए पुत्र की अवश्यकता होती है। ४०-४५ वर्ष की आयु तक पुत्र या पुत्री न होने पर सजातीय पुत्र या पुत्री को विधिवत् अपनी संतान स्वीकार करना दत्तक पुत्र संस्कार है। इससे व्यक्ति अपने गार्हस्थिक दायित्वों से मुक्त होकर निर्वाध रूप से मोक्षमार्ग प्रशस्त करता है।

दत्तक पुत्र संस्कार की सावधानियाँ-

१. दत्तक पुत्र अपनी जाति और निकट सम्बन्धी का होना चाहिए।

२. दत्तक पुत्र अल्पायु का होना चाहिए।

३. दत्तक पुत्र देने एवं लेने वालों की पूर्ण स्वीकृति होना चाहिए।

४. दत्तक पुत्र की न्यायालय से भी अनुमोदना कराके उसके सम्पूर्ण दान पत्र बनवा लेना चाहिए।

५. दत्तक पुत्र लेने के अपनी संतान या पुत्र होने की दशा में दत्तक पुत्र को अपने पूर्ण अधिकार देने चाहिए।

६. दत्तक पुत्र लेने पर उसके संस्कार अवश्य कराके उसे अपने गोत्र में परिवर्तन करा लेना चाहिए।

७. दत्तक पुत्र लेने पर उसे यह आभास नहीं होना चाहिए कि मैं दत्तक पुत्र हूँ।

८. दत्तक पुत्र को लेने पर उसे अपने जैनत्व के संस्कार शीघ्र दिलाने चाहिए।

९. दत्तक पुत्र का नाम, नाम संस्कार की विधि से रखना चाहिए।

१०. दत्तक पुत्र जितने माह का हो उसके पूर्व के पूर्ण संस्कार अवश्य कराना चाहिए।

दत्तक पुत्र-संस्कार विधि-

दत्तक पुत्र देने व लेने वाले दोनों पक्षों को अपने-अपने सम्बन्धियों को आमन्त्रित करना चाहिए। समाज के प्रमुख श्रावकजनों के साक्षीपूर्वक यह क्रिया करके उनका सम्मान भी करना चाहिए। दोनों पक्षों को बालक को लेने और देने की स्वीकृति प्रदान करना चाहिए। यह क्रिया गृहस्थाचार्य के निर्देशन में विधि विधान से मुहूर्त आदि का विचार करके सम्पन्न कराना चाहिए।

मंगलकलश, दीपक आदि स्थापित कर सौभाग्यवती महिलाओं से रंगोली बनवाकर उस पर चौकी रखकर माता-पिता को बालक के लिए उस चौकी पर बैठाना चाहिए। गृहस्थाचार्य को निम्न मंत्रों से क्रियाओं को सम्पन्न कराना चाहिए। निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक पर जल छिड़कना चाहिए।

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा णमो अरिहंताणं सप्तर्द्धि समृद्ध गणधराणां अनाहतपराक्रमस्ते भवतु भवतु ह्रीं नमः ।

निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक पर पुष्प क्षेपण करना चाहिए।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राय नमः ।

ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा णमो अरिहंताणं अनाहत पराक्रमस्ते भवतु भवतु ह्रीं नमः स्वाहा।

[नोट-यहाँ पर यदि उचित लगे तो प्रशस्ति पत्र एवं संकल्प पत्र भी किसी विद्वान के निर्देशन में बनवाया जा सकता है।]

निम्न मंत्र पढ़ते हुए बालक के माता-पिता को बालक का दाहिना हाथ, बालक लेने वाले माता-पिता को सौंपना चाहिए।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते वर्धमानाय श्री बलायुरारोग्य कुल गोत्र सन्तानाभिवर्धनं भवतु अमुं बालकं नामधेयं..... (बालक का नाम) दम्पतये पुत्ररूपेण ददामि झ्वीं झ्वीं हं सः स्वाहा।

गृहस्थाचार्य को, दोनों माता-पिता को एवं उपस्थित सभी जनसमूह को बालक पर पुष्प क्षेपण करते हुए आशीष देना चाहिए। महिलाओं को भी मंगलाचार करना चाहिए। उपस्थित सभी महानुभावों का भेंट एवं भोजनादि से सम्मान करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

19. शवदाह क्रिया/संस्कार (अंतिम संस्कार)

देह से आत्मा निकल जाने के पश्चात मृत शरीर को शव कहते हैं। शव को अग्नि में जला देना शवदाह क्रिया/संस्कार कहलाता है। मृत शरीर के संस्कार के लिए दो घड़ी के भीतर ही परिवार के सब लोगों को एकत्रित होकर मृतक को श्मशान में ले जाना चाहिए क्योंकि दो घड़ी के पश्चात उस मृत शरीर में अनेक त्रस जीव उत्पन्न हो सकते हैं। श्मशान में जो भूमि जीव रहित हो वहाँ सूखा प्रासुक ईंधन एकत्रित कर दाह-क्रिया करने के पश्चात् अपने घर आकर प्रासुक पानी से स्नान करना चाहिए। तीन दिन बाद श्मशान जाकर भस्म एवं अस्थि विसर्जन आदि करने का उल्लेख है क्योंकि अग्नि की उत्कृष्ट आयु तीन दिन की है। तीन दिन में जब अग्नि पूर्णतः शान्त हो जाती है तब अन्य क्रिया करनी चाहिए।

शवदाह क्रिया/संस्कार (अंतिम संस्कार) की सावधानियाँ-

१. शव दाह में शीघ्रता करना चाहिए क्योंकि विलम्ब करने से शव में असंख्यात जीवों की उत्पत्ति हो सकती है।

२. शव को रात्रि में रखना पड़े तो उसका छेदन करके शव पर कपूर अवश्य रखना चाहिए।

३. मजबूत विमान के लकड़ी सूखी जीव रहित एवं पर्याप्त होनी चाहिए। नारियल, गोला फोड़ कर उपयोग करना चाहिए।

४. शव जलने तक दाह स्थल की पूर्ण सुरक्षा व्यवस्था करना चाहिए।

५. शव दाह में उपलों का उपयोग न करें।

६. मिथ्यात्व पोषक क्रियाओं से रहित शव दाह क्रिया में रात्रि में नहीं करना चाहिए।

७. शोक संवेदना देने वालों के साथ बैठकर रागादिक एवं पूर्व के स्मरणों का कथन नहीं करना चाहिए।

८. रुदन/शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे असाता-वेदनीय कर्म का आश्रव बंध होता है अतः वैराग्यवर्धक वातावरण से दुख में समता रखने का प्रयास करना चाहिए।

९. तीसरे दिन शुद्धि के पश्चात् शोक सन्तप्त परिवार के यहाँ उनके साथ सामूहिक रूप से वैराग्यवर्धक भावना आदि का पाठ करना चाहिए।

१०. अभी-अभी जो स्त्री विधवा हुई हो उसे अथवा जिन्हें सूतक लगा हो उन्हें प्रतिदिन देव-दर्शन एवं तेरहवें दिन या पीढ़ी के अनुसार सूतक का पालन करते हुए पूजन, स्वाध्याय एवं आहारदान आदि धार्मिक कार्य करना चाहिए।

१. देशान्तर मरण

अपने कुटुम्ब का कोई व्यक्ति देशान्तर को चला जाए और उसका कोई समाचार न आवे तो ऐसी दशा में वह पूर्व वय (तरुण अवस्था की पूर्व अवस्था) का हो तो अट्ठाईस वर्ष तक, मध्यम वय का हो तो पंद्रह वर्ष तक और अपूर्व वय (मध्यम वय के बाद की अवस्था) का हो तो बारह वर्ष तक उसके आने की राह देखनी चाहिए अनन्तर विधिपूर्वक उसकी प्रेत (शव) क्रिया करनी चाहिए। उसका छह वर्ष तक अपनी शक्ति के अनुसार प्रायश्चित ग्रहण करना चाहिए और यदि प्रेत कार्य करने पर वह आ जाए तो उसका सर्वौषधि रस और घृत से अभिषेक करें उसके सब जातकर्म संस्कार करें, नवीन यज्ञोपवीत संस्कार करें और यदि उसका पहले विवाह हुआ हो और वह पूर्व पत्नि जीवित है तो उसी के साथ पुनः विवाह किया जाना चाहिए।

२. रजस्वला मरण

रजस्वला स्त्री मर जाए तो उसे स्नान कराकर एवं दूसरे वस्त्र पहनाकर विधिपूर्वक उसके शव का दहन करना चाहिए।

३. गर्भिणी मरण

गर्भवती स्त्री गर्भ के छह माह के पूर्व मर जाए तो उसका गर्भच्छेद न कर गर्भ सहित ही दहन करना चाहिए। यदि गर्भ छह माह से अधिक का हो तो उस मृत गर्भिणी को श्मशान में ले जाएँ, वहाँ उसका पति, पुत्र, पिता या बड़ा भाई इनमें से कोई उसके नाभि से नीचे के बायें भाग की तरफ से उदर चीरकर बच्चे को बाहर

निकालकर बालक का जल से अभिषेचन कर यदि बालक जीवित हो तो उसे पालन पोषण के लिए दे देना चाहिए। उदर के छेद में घृत भरकर दाह क्रिया करनी चाहिए।

४. दुर्मरण

बिजली, जल, अग्नि, चाण्डाल, सर्प, पक्षी, वृक्ष, व्याघ्र तथा अन्य पशु इत्यादि के द्वारा पापियों का मरण होता है।

जो विष, शस्त्र, अग्नि आदि के द्वारा आत्मघात कर स्वेच्छा मरण को प्राप्त होता है वह सीधा नरक जाता है। ऐसे मनुष्य का देश और काल के भय से दाह संस्कार नहीं कर सकते हों तो राजा आदि की आज्ञा लेकर उसकी दाह-क्रिया करनी चाहिए। छह माह पश्चात शान्तिविधान करके उसका विधिपूर्वक उपवास आदि प्रायश्चित ग्रहण करके शुद्धि करनी चाहिए। यदि वह अपनी अनिच्छा से विषादि द्वारा मरण को प्राप्त हुआ हो तो उसका दाह संस्कार तत्काल करें। शस्त्र आदि का प्रहार होने पर सात दिन के पहले यदि उसका मरण हो जाए तो वह दुर्मरण है ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं।

शवयात्रा-

मरण के बाद शीघ्रतापूर्वक शव का दाह संस्कार करना चाहिए। यदि मरण संध्या या रात्रि में होता है तो गोधूलि बेला के बाद शवदाह नहीं करना चाहिए। रात्रि में शव की छेदन क्रिया करें, जगह-जगह कपूर रखें। इससे जीवों से शव की सुरक्षा होती है। शव को ढक दें एवं रात्रि में दृढ एवं स्थिर चित्त वाले साहसी व्यक्ति जागरण करें। परिजनों को सांत्वना दें, संसार, शरीर और भोगों की नश्वरता का

स्वरूप समझकर शोक कम करना चाहिए क्योंकि रोने से अशुभ कर्मास्रव होता है। प्रातः काल शीघ्रता से शवदाह क्रिया करना चाहिए।

एक अच्छा विमान (ठठरी) बनाकर उसमें शव को मजबूती के साथ सुलाकर उसके मुख आदि सब अंगों को वस्त्र से ढाँककर ऊपर पुष्पमालाएँ लपेटना चाहिए । चार व्यक्तियों को उस विमान को धीरे से उठकार कन्धे पर रखकर सावधानी से ले जाना चाहिए। शव का मस्तक ग्राम की तरफ रखना चाहिए। परिवार के एक योग्य सदस्य को उखानल (हाँडी में अग्नि रखकर) लेकर चलना चाहिए। कुटुम्बीजनों को विमान के आगे-आगे एवं अन्य सब लोगों को विमान के पोछे-पीछे गमन करना चाहिए।

दाह विधि-

शवदाह के लिए चार प्रकार की अग्नियों का उल्लेख है-

१. लौकिक अग्नि-घर में भोजन बनाने के लिए जो चूल्हे की अग्नि होती है उसे लौकिक अग्नि कहते हैं इससे सर्व साधारण के शवदाह संस्कार किए जाते हैं।

२. औपासन अग्नि-सामान्य अग्नि को धूप आदि से **ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।** इस मन्त्र से हवन करके औपासन अग्नि बना लेना चाहिए इससे विशेष बुद्धिमान पुरुषों के शवदाह संस्कार किए जाते हैं।

३. सन्ताप अग्नि-लौकिक अग्नि को पाँच बार दर्भ डाल-डालकर सन्तापित अग्नि बना लेना चाहिए इससे कन्या और विधवा के शवदाह संस्कार किए जाते हैं।

४. अनु अग्नि (अन्वग्नि)–चूल्हे की अग्नि को मिट्टी की हाँडी या अन्य किसी वर्तन में रखकर उसमें ईंधन (नारियल/गोला आदि) जलाकर अन्वग्नि बना लेना चाहिए। इससे सभी स्त्रियों के शवदाह किए जाते हैं।

(निम्न मन्त्र को पढ़कर चिता बनाना चाहिए।)

ॐ ह्रीं ह्रः काष्ठ सञ्चयं करोमि स्वाहा।

(निम्न मन्त्र को पढ़कर शव को चिता पर स्थापित करना चाहिए।)

ॐ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा।

अनन्तर उखाग्नि को प्रज्वलित करें, उसमें एक बार घृत की आहूति दें और चारों ओर जल सिञ्चन करना चाहिए पश्चात् उस अग्नि को उठाकर परिस्तर पर क्षेपण कर उसके ऊपर लकड़ियाँ रखना चाहिए अनन्तर चिता के चारों और अग्नि प्रज्वलित कर उस शव को दग्ध करना चाहिए।

(निम्न मंत्र का उच्चारण कर अग्नि जलाना चाहिए एवं घृत आदि की आहुति देकर चिता में अग्नि लगाना चाहिए।)

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निसन्धुक्षणं करोमि स्वाहा।

अनन्तर जलती हुई चिता पर घी आदि डालकर जलाशय पर जाकर स्नान करना चाहिए। सब जातीय बान्धवों के साथ-साथ जलाशय के समीप जा। परन्तु उनमें से विमान उठाने वालों को और संस्कार कर्त्ता को उस चिता की प्रदक्षिणा अवश्य देना चाहिए।

शव गाड़ने की विधि-

नामकरण से पहले मरे हुए बालक के शरीर को संस्कार खनन अर्थात् जमीन में गाड़ना चाहिए। नामकरण के बाद और अशन-क्रिया से पहले मरे हुए का खनन अथवा दहन करना

चाहिए। दाँत उग आने के बाद बालक मरण को प्राप्त हो तो उसका दहन संस्कार करना चाहिए अथवा नामकरण और उपनयन से पहले मरे हुए बालक का संस्कार खनन और दहन इन दोनों में से कोई एक करना चाहिए।

यद्यपि विकल्प में यह बात कही गई है तो भी इसका निर्वाह इस तरह करना चाहिए कि तीसरे वर्ष जो चूलकर्म होता है उससे पहले और नामकरण के बाद अर्थात् कुछ कम दो वर्ष तक तो जमीन में ही गाड़ना चाहिए पश्चात् तीन वर्ष पूर्ण न हो तब तक जमीन में गाड़ना या जलाना दोनों में से एक करना चाहिए। तीन वर्ष के बाद जमीन में नहीं गाड़ना चाहिए किन्तु जलाना चाहिए।

दुष्ट-तिथि मरण प्रायश्चित-

दुष्ट-तिथि, वार, नक्षत्र और योग में यदि किसी का मरण हो या मृतक को मरण के उपरान्त बहुत देर बाद जलाने के लिए ले जाना हो तो उस दोष के परिहार के लिए कर्त्ता को हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा देकर विद्वानों से प्रार्थना कर और प्रायश्चित लेना चाहिए। यथाशक्ति जिन भगवान और महायन्त्र की पूजा, शान्तिविधान और होम कर महामन्त्र का जाप्य करना चाहिए। कुछ धर्मात्माओं को आहार देकर नौ, सात या पाँच तीर्थों की वन्दना करना। यह दुष्ट तिथि आदि में मरने का प्रायश्चित है।

मृतक क्रिया के कर्त्ता द्वारा निषिद्ध कर्म-

जब तक बारहवें दिन की शेष क्रिया न कर लें तब तक दाह-कर्त्ता को निम्न व्रतों का पालन करना चाहिए तथा अन्य कुटुम्बीजन को दसवें दिन तक इन व्रतों को पालना चाहिए।

१. मृत-क्रिया कर्त्ता को मरण दिन से लेकर शुद्धि दिन तक गृहस्थ के षट्कर्म नहीं करना चाहिए।

२. धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन नहीं करना कराना चाहिए।

३. मिष्ठान्न, तांबूल (पान) नहीं खाना चाहिए।

४. तिलक नहीं करना चाहिए।

५. पलंग पर नहीं होना चाहिए।

६. सभा-गोष्ठी में नहीं बैठना चाहिए।

७. क्षौरकर्म नहीं कराना चाहिए।

८. घी दूध का त्याग कर एक बार भोजन करना चाहिए।

९. अन्य देश/ग्राम को नहीं जाना चाहिए।

१०. सामूहिक भोजन नहीं करना चाहिए।

११. स्त्री सेवन नहीं करना चाहिए।

१२. तेल की मालिश कर स्नान नहीं करना चाहिए।

१३. पाँसे/चौपड़/शतरंज आदि नहीं खेलना चाहिए।

१४. सिर पर पगड़ी-साफा व टोपी वगैरह नहीं लगाना चाहिए।

१५. मंत्रोच्चारण के अंत में सिर्फ स्वाहाः शब्द का प्रयोग करना चाहिए, मन्त्रोच्चारण नहीं करना चाहिए।

यह सब प्रेत (शव) दीक्षा है।

मृतक क्रिया का कर्त्ता

मृतक क्रिया का कर्त्ता सबसे पहले पुत्र है। पुत्र के अभाव में पोता, पोते के अभाव में भाई, भाई के अभाव में उसके लड़के, उनके भी अभाव में सपिण्डों (जिनको दस दिन तक का सूतक लगता है ऐसे चौथी पीढ़ी तक के सगोत्री बान्धवों) की सन्तान है। इन सभी का अभाव हो तो पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे के संस्कार कर्त्ता हो सकते हैं। इनका भी अभाव हो अर्थात् पुरुष के पत्नी न

हो और स्त्री के पति न हो तो उनकी जाति का कोई एक पुरुष हो सकता है। जिसका उपनयन संस्कार नहीं हुआ हो वह भी कथंचित् कर्त्ता हो सकता है परन्तु सजाति होना चाहिए।

अस्थि-सञ्चय-

मंगलवार, शनिवार, शुक्रवार और रविवार को अस्थि. सञ्चय नहीं करना चाहिए, किन्तु सोमवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को करना चाहिए। उन अस्थियों को लाकर पर्वत आदि की शिला के नीचे या जमीन में पुरुष प्रमाण पाँच हाथ या साढ़े तीन हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें रखना चाहिए।

श्मशान-क्रिया के बाद

१. श्मशान-क्रिया के बाद श्मशान से लौटने के बाद गृहस्थों को सम्पूर्ण स्नान कर वस्त्र धोना चाहिए।

२. यदि जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहनकर गए हों तो उसे उतारकर स्नान कर नया धारण करना चाहिए। पश्चात् मन्दिर दर्शन करने तो जाना चाहिए किन्तु वहाँ किसी वस्तु का स्पर्श नहीं करना चाहिए।

३. मृतक के परिवारजनों को शोक सभा आदि का आयोजन कर सान्त्वना देना चाहिए।

४. बारह दिन का सूतक समाप्त होने के बाद मृतक के परिजनों को शवदाह आदि दोष के प्रायश्चित रूप में शान्तिकर्म/विधान करना चाहिए।

५. मिथ्यात्व पोषक क्रियाएँ नहीं करना चाहिए।

६. शान्तिकर्म/विधान मृत आत्मा की शान्ति हेतु नहीं अपितु शव दाह आदि क्रियाओं से जो हिंसादि दोष लगे, शोक किया एवं पूजन आदि षट्कर्म नहीं किए उसके प्रायश्चित्त स्वरूप किया जाना चाहिए।

❑ ❑ ❑

20. वैधव्य दीक्षा

पति का परलोकवास हो जाने पर उसकी स्त्री बारहवें दिन जलाशय पर स्नानकर पाँच स्त्रियों को उपायन भेंट दे। (उत्तम भोजन, फल, गन्ध, वस्त्र, पुष्प, नकद रुपया-पैसा वगैरह देना उपायन है।) इसके अनन्तर यदि वह विधवा स्त्री जिनदीक्षा आर्यिका या क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण करना चाहे तो सबसे उत्तम है अथवा वैधव्य दीक्षा ग्रहण करना चाहिए।

वैधव्य अवस्था के कर्त्तव्य-

१. वैधव्य दीक्षा में उस स्त्री को देशव्रत ग्रहण कर गले में पहनने के मंगल सूत्र, कानों के आभूषण, आँखों में काजल, अन्य आभूषण, पलंग पर सोना, हल्दी आदि उबटन से स्नान करना, शोकपूर्ण रुदन करना और विकथाएँ आदि का त्याग करना चाहिए।

२. शरीर पर पहनने और ओढ़ने के मात्र दो वस्त्र रखकर सुबह, दोपहर और संध्या में स्तोत्रों का पाठ करना, जाप देना, शास्त्र सुनना, उनका चिंतन करना, बारह भावना एवं आत्म-भावना भाना और यथाशक्ति पात्रदान देना चाहिए।

३. लोलुपता और तांबूल/पान आदि रहित एक बार भोजन करना चाहिए।

४. पति के देहावसान के बाद स्नान कर परिवार की स्त्रियों के साथ जिनदर्शन कर, बारह भावनाओं का चिन्तन करके मन को शोक रहित कर स्थिर भाव से जिनभक्ति करने में मन लगाना चाहिए।

५. बारहवें दिन बाद नियम से जिनपूजन स्वाध्याय आदि कर संसार, शरीर और भोगों से उदासीन रह कर सात्विक भोजन करते हुए संयमी जीवन व्यतीत करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

21. पुण्याहवाचन

प्रत्येक क्रिया के उपरांत निम्न प्रकार से पुण्याहवाचन करना चाहिए-

(एक मंगलकलश में जल लेकर निम्न प्रकार से मंत्रोच्चार करते जल की धारा करना चाहिए)

ॐ पुण्याहं पुण्याहं लोकोद्योतनकरा अतीतकाल सञ्जाता निर्वाणसागर-प्रभृतयश्चतुर्विंशति-भूत-परमदेवाश्च वः प्रीयन्ताम् प्रीयन्ताम् । (धारा...)

ॐ सम्प्रतिकालसम्भवा श्री वृषभादिवीरान्ताश्चतुर्विंशति-परमदेवाश्च वः प्रीयन्ताम् प्रीयन्ताम् ।

ॐ भविष्यत्कालाभ्युदय-प्रभवा महापद्मादि-चतुर्विंशति भविष्यत्परमदेवाश्च वः प्रीयन्ताम् प्रीयन्ताम् ।

ॐ त्रिकालवर्ति-परमधर्माभ्युदयाः सीमन्धर-प्रभृतयो विदेह क्षेत्रगत-विंशतिपरमदेवाश्च वः प्रीयन्ताम् प्रीयन्ताम् ।

ॐ वृषभसेनादिगणधरदेवाः वः प्रीयन्ताम् प्रीयन्ताम् ।

ॐ सप्तर्द्धि-विशोभिताः कुन्दकुन्दाद्यनेक-दिगम्बरसाधु चरणा वः प्रीयन्तात् प्रीयन्ताम् ।

इह वान्य-नगरग्राम देवतामनुजाः सर्वे गुरु भक्ता जिनधर्म परायणा भवन्तु। दानतपो वीर्यानुष्ठानं नित्यमेवास्तु सर्वजिन भक्तानां धन धान्यैश्वर्यबलद्युतियशः प्रमोदोत्सवाः प्रवर्धताम् तुष्टिरस्तु। पुष्टिरस्तु। वृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु। अविघ्नमस्तु। आयुष्यमस्तु। आरोग्यमस्तु। कर्मसिद्धिरस्तु। इष्ट सम्पत्तिरस्तु। काममांगल्योत्सवाः सन्तु। पापानि शाम्यन्तु। घोराणि शाम्यन्तु।

पुण्यं वर्धताम्। धर्मोवर्धताम्। श्रीवर्धताम्। कुलगोत्र चाभि-वर्धतामृ। स्वस्तिभद्रं चास्तु इवीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा। श्रीमज्जिनेन्द्र-चरणारविन्देष्वानन्द-भक्तिः सदाऽस्तु ।

(तदुपरान्त शान्तिपाठ एवं विसर्जन करना चाहिए)

❑ ❑ ❑

बुन्देली-भजन

(लय-रिश्तेदार पूरे बुलाउनें...)

नातेदार सबरे बुलाउनें।
आदि को ब्याव रचाउनें॥
आदि हमाय हो गए दूल्हा के घाईं, आदि की परवानें हमें चाईं-माईं।
आदि खों दुल्लू दुआउनें, आदि को ब्याव रचाउनें॥१॥
पूरी समाज खों बुलाउनें, उपनैन संस्कार कराउनें।
सबरे कुटुम्बों खों आउनें, सबरों कौ मुंडन कराउनें॥२॥
मौंड़ा-मौंड़ी जनम से शूद्र होंए, उपनैन संस्कार से वे जैन होंए।
सबरों खों जैनईं बनाउनें, सबरों कौ मुंडन कराउनें॥
सातों व्यसन सें इनें दूर काड़ौ, मूलगुण आठों से इनखों सँवारौ॥३॥
जैनों के संस्कार दिलाउनें, सबरों कौ मुंडन कराउनें॥
अपनी समाज के सब बच्चों खों जोरौ, जिनसेन आचार्य कौ कहौ मानौ थोरौ॥४॥
साँचे जैन श्रावक बनाउनें, सबरों कौ मुंडन कराउनें॥
बच्चों के बनवे खों नौने संगाती, साँचे बराती और साँचे घराती।
सबरों से अभिषेक कराउनें, सबरों कौ मुंडन कराउनें॥५॥
मुंडन करावे सें जी नईं चुरइयौ, आप खुदइ अइऔ परौसी खों लइयौ।
'विद्या' के 'सुव्रत' दुआउनें, सबरों कौ मुंडन कराउनें॥६॥

❑ ❑ ❑

बुन्देली-भजन

मोरे हृदय में जग रऔ है भाव भैया।
सबरे भक्तों को मुंडन कराऔ भैया॥
(सबकौ उपनैन संस्कार कराऔ भैया)॥
मोरे हृदय में...।
आज भ्याने कैत-कैत गुजर गईं बरसें।
मुंडन नें करा पाए बार उड़े सर सें।
मुंडन खों केऊ जनें सदियों सें तरसें॥
मिलौ मौका प्यारो नें गवांऔ भैया।
अपनौ झट्टंई सें मुंडन कराऔ भैया॥
मोरे हृदय में...।
जौ लों तौ मुंडन नें हुइए तुमारौ।
तौ लौ नें मिल है धरम को सहारौ।
सो भज्जा जौ समझौ साधु कौ इशारौ॥
संस्कारों से जी नें चुराऔ भैया।
अपने संस्कारों खों तौ बचाऔ भैया॥
मोरे हृदय में...।
बिना संस्कारों सें जग के नें काम होंए।
बिना संस्कार फिर कैंसें कल्यान होंए।
संस्कारों सें पथरा परमात्मा के घाईं होंए॥
अब तौ नर खों नारायण बनाऔ भैया।
लेकिन पैलें 'सुव्रत' के हो जाऔ भैया॥
मोरे हृदय में...।

❑ ❑ ❑